मानस चतुःशती के अवसर पर

रामकथा और नये प्रतिमान

•

प्रस्तुत कर्ता
शंभुनाथ
आई० ए० एस०

समालोचनार्थ भेंट

क. दे. त्रिवेदी
१८.४.७४

मानस चतुश्शती के अवसर पर

रामकथा और नये प्रतिमान

•

प्रस्तुत कर्त्ता
शंभुनाथ
आई० ए० एस०

विश्वभारती अनुसंधान परिषद्
ज्ञानपुर (वाराणसी)

प्रथम संस्करण

१९७४

प्रकाशक

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

विश्व भारती अनुसन्धान परिषद्

शान्ति निकेतन, ज्ञानपुर

वाराणसी

मुद्रक

विश्वनाथ दत्त

दी इउरेका प्रिंटिंग वर्क्स प्रा० लि०

वाराणसी

प्रधान सम्पादक

शम्भु नाथ, आई० ए० एस०

सह सम्पादक

बैद्यनाथ पाण्डेय

डॉ० होरिल

श्रीकान्त शर्मा

रामकथा और नये प्रतिमान

निवेदन

'तुलसी और रामकथा'—कुछ नये संदर्भ के पश्चात् 'रामकथा और नये प्रतिमान' को आपके हाथों में सौंपते हुए हम प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। इस पुस्तिका में सभी सुधी लेखकों ने तुलसी एवं रामकथा को नयी दृष्टि से देखाहै। प्रत्येक लेखक के विचार स्वतन्त्र एवं उसके अपने हैं। उससे आपकी सहमति अनिवार्य नहीं, तथापि नये परिप्रेक्ष्य के इस विचार-क्रम से यदि आपके चिन्तन को नई दिशा एवं नये आयाम मिलें तो हम अपने विनम्र प्रयास को सफल मानेंगे। हम श्री बनारसी दास चतुर्वेदी के प्रति उनके प्रेरणा-दीप्त आशीर्वचन के लिए अत्यन्त आभारी हैं। इसके अतिरिक्त हम सुधी लेखकों एवं अधोलिखित मानस-प्रेमी-संस्थाओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं :—

मानस चतुश्शती समारोह परिवार ज्ञानपुर, मानस सत्संग-गोष्ठी खमरिया, मानस चतुश्शतो समारोह समिति भदोही, महर्षि वाल्मीकि आश्रम-व्यवस्था समिति डीघ।

—प्रकाशक

अतीत के पृष्ठों की
सुधियों में
जहाँ अन्तर्मन की एक क्रान्ति में
दस्यु के महामानव रूपान्तरण में
कविता की पहली पंक्ति संभव हुई
जिसकी संतप्त अनुगूँजे
लवकुश की शौर्य-गाथा में मुखरित हो
एक मिटती, क्षीण स्वर-लहरी-सी
उपेक्षिता सीता की अनकही करुणा में
फिर डूब गयीं....
बस,
एक मौन,
एक दारुण सन्नाटा....
और,
युग-युग की
नीरव स्तब्धता
जिसने
आज तक
अनजान, उपेक्षित, निर्वासित रखा है
उस
'सीतामढ़ी' को
जो कल का
नया प्रतिमान
बनेगा !

विषय-क्रम

आमुख

और फिर तुलसी ?

चार शताब्दियों के दायरों को लाँघता एक नाम। एक दीन-हीन मनुज। मध्यकालीन फैन्तासी और रामराज्यीय 'यूटोपिया' में अपने युग की विकृतियों को सँवारता, खोया, बेसुध कवि। पत्नी से दुत्कारा, समाज से उपेक्षित, गरीब, फटेहाल। बस राम का सहारा लिये। उसी की याद में जमाने के गम को भुलाता हुआ, एकान्त कुण्ठाओं को शमित करता हुआ, आध्यात्मिक शीर्षों को हेरता हुआ एक मध्ययुगीन सन्त।

और रामकथा ?

और फिर राम ? आदिकवि वाल्मीकि के चरितनायक। महामानव। फिर, महाभारत की कथाओं से जैन एवं बौद्ध आख्यानों तक। और फिर 'भाखा' की वीथि से जन-जन के 'मानस' में घर कर लेने वाला विलक्षण अवतारी चरित्र। देश-देशान्तरों तक गूँजने वाला एशियाई 'हीरो' जिसके भौगोलिक विस्तार में मिथकीय एवं ऐतिहासिक चेतनाओं के 'थीसिस' 'एन्टीथीसिस तथा 'सिनथीसिस' का द्वन्द्वात्मक उद्‌भव है। पर, आज फिर वही नाम क्यों ?

क्या कबीर की सधुक्कड़ी जुबान से निकली वह तीर सी तीखी, चुभती बात आज भी सही है कि "दशरथ सुत तिहूँ लोक बखाना। राम नाम है मरम न आना।" क्या नये प्रतिमान इसी नासमझी की जमीन पर खड़े होकर नये आकाश छूना चाहते हैं ?

नये प्रतिमान ?

नये प्रतिमान भी एक प्रश्न चिन्ह खींचते हैं। इलियट की उक्ति ताजी हो उठती है कि हर युग अपने ही चश्मे से साहित्य को समझता-देखता है, अपने प्रतीकों, अपने प्रतिमानों के माध्यम से कवि एवं काव्यों को आँकता,

सँजाता, सँवारता है। यह कोई क्रान्ति नहीं, महज एक नये क्रम में पुनरभियोजन (readjustment) की बात है। इलियट के ही शब्दों में :

"From time to time, every hundred years or so, it is desirable that some critic shall appear to review the past of our literature and set the poets and the poems in a new order. This task is not of revolution but of readjustment. Each generation, like each individual makes his own demand upon art, and has its own uses for art."

बात पुनराकलन की है। हम मानस एवं मानसकार को अपनी ही स्थिति-परिस्थितियों से देखते हुये उसका टटकापन परखते हैं। तथापि, कवि की युगीन सीमाओं का ध्यान रखना अपेक्षित होगा, अन्यथा हम तुलसी एवं राम कथा के साथ न्याय नहीं कर पायेंगे। टूट, भटकाव, विघटन, घुटन एवं कुण्ठा जिनके गुंजलक हमें घेरे हैं, उन्होंने तुलसी के युग को भी अपनी दमघोंट जकड़ में दबोचा था। अकाल और रोग तब भी व्याप्त थे। खुद तुलसी विपन्नता एवं असाध्य रुग्णता के शिकार हुये और अपनी अरजी 'विनय पत्रिका' में लिखी। 'हनुमान बाहुक' में भी पीर का दंश है। 'कवितावली' में तुलसी ने समाज से दुत्कारे जाने तथा बेघर, बेठौर हो जाने की बात लिखकर अपने अजनबियत के दर्द को उभारा है। और दीनता, दयनीयता की हद तो यहाँ तक कि हर जाति और हर तबके के उच्छिष्ट टुकड़ों पर दिन काटने पड़े :

"जाति के, सुजाति के, कुजाति के पेटागि बस,

खाये टूंक सबके, विदित बात दुनी सी।"

(तुलसी : कवितावली)

अभाव एवं विपन्नता की यह स्थिति क्या आज नहीं ? 'डालडा' तक की तलाश में भटकता आज का आदमी कम दयनीय नहीं। फटेहाली, अजनबियत और रुग्ण कुण्ठाओं के सन्दर्भ में मानस एवं मानसकार के वृत्त में अभी टटकापन बाकी है।

हाँ, तुलसी ठहरे कवि। तन-मन की पीर स्वप्न पाँखी कविता की उड़ान से राघवेन्द्र तक पहुँचा दी और अपना गम गलत कर लिया। रामराज्यीय फैन्तासियों को बुनने तथा महलों के वैभवपूर्ण ऐश्वर्य के ताने बानों को डालने में तुलसी ने फटेहाली में भी कल्पना-प्रसूत राजसीपन महसूस किया होगा। फिर, 'रामभगति' में सुध-बुध खोकर 'हरिकृपा' भी प्राप्त की होगी। आज के

आदमी के पास आपाधापी के पागलपन में इतना समय और धैर्य कहाँ कि यूटोपिया की 'फैन्तासी' तथा गरिमामय ऐश्वर्य के कल्पना-विलास से ही निगल जाने को तत्पर, मुँह बायी परिस्थितियों से छुटकारा पा ले और स्वप्नदर्शी होने के लिए इतनी काव्यमय प्रतिभा तथा कल्पनागत् प्रचुरता कहाँ है ? हाँ, यहाँ तक पहुँचने के पूर्व जो तीते घूँट तुलसी ने पिए थे, उसके कड़ुयेपन का तीखा आज के आदमी में है और इसीलिए, ग्रामीण राम बोला और उसके वनवासी राम के चरित्र आज भी बरबस हमारा ध्यान खींचते हैं।

महामारी, अकाल और दीनता से उत्पीड़ित युग के थके, टूटते लोगों के आगे रामराज्यीय स्वर्णिम सपनों की झलमलाहट रखकर तुलसी ने 'स्वान्तः सुखाय' की परिधि के बाहर छटपटाती समष्टि को जिजीविषा के नवो मेष एवं नव संकल्प दिए होंगे। चार सौ वर्षों से रामराज्य के आदर्श को ढोते हुए आज कंधे कुछ बोझिल हो गये हैं। सपना-सपना ही है। आज का आदमी इस सपने से निर्भ्रान्त (disillusioned) होता दीख रहा। इस सपने को संकल्पों के द्वार तक कुछ दशकों पूर्व महात्मा गाँधी ने लाया था। नयी दृष्टि से सामवन्ती व्यवस्था मूलक राजतन्त्रीय रामराज्य एक अतीतगत फैन्तासी ही दीखती है। इसको जमीन से जन्म लेते भविष्य के सपनों की झिलमिलाहट फीकी पड़ रही है। भयावह एवं विकृत यथार्थ बोध एवं विज्ञानवादी दृष्टिकोण ने संशय को ही पनपाया है।

श्रद्धा और 'गुरुडम' की बात पुरानी है। गुरु और गोविन्द में भी गुरु की श्रेष्ठता कबूलने की बात बेमानी हो गयी है। आज की व्यक्तिवादिता किसी आरोपित अधिकारिता को ग्रहण नहीं कर सकती। 'एण्टी औथिरिटेरियन' (anti-authoritarian) होना नयापन प्रतीकित करता है। शिव ने पार्वती को रामत्व पर सन्देह करने पर कोसा था। पार्वती मानती नहीं है। वह स्वयं सीता का रूप धरके राम के ईश्वरत्व की परीक्षा लेती है। यह प्रसङ्ग आज के 'बैजाराव' सरीखे आधुनिकों को आकर्षित करता है। फर्क यही है पार्वती को परीक्षा लेने के बाद सच्चाई को जानकर ग्लानि हुई। आज का अविश्वासी सत्यार्थी सच को जानकर ग्लानि नहीं करता।

नये प्रतिमानों के माध्यम से रामकथा को फिर से ठोक-परख कर समझना उचित होगा। रामकथा का ताजापन तो इसी में है कि आज भी कोटि-कोटि कण्ठों, मन, प्राणों में यह कथा धँसी, बसी है। आज का थका-टूटा आदमी कहीं कभी की बची-खुची आशा से मानस को गाता सुमिरता है।

कैसे 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' 'भाखा' की यह रचना कोटि-कोटि मन प्राणों का कण्ठहार बन गयी है, यह शोध-प्रश्नों का क्षेत्र है। नये वातायन से इसका शोध एवं आकलन अपेक्षित है। नयी दृष्टि श्रद्धा से कहीं ज्यादा संशय की है। जहाँ तुलसी वर्णाश्रम धर्मी, अंधविश्वासी, दकियानूसी एवं अवास्तविक दीखते हैं, वहाँ हमें खरे एवं खोटे की पहचान सतर्क दृष्टि से करनी पड़ेगी। जहाँ तुलसी नारी स्वातंत्र्य के विरोधी प्रतीत होते हैं, वहाँ हमें मानसकार की मध्ययुगीन सीमाओं के प्रति सचेत होकर नये जीवन-मूल्यों को ग्रहण करना होगा। मानस की शाश्वतता को बदस्तूर रखने का मतलब है, उसमें चार सौ साल से जहाँ-तहाँ जमी धूल को झाड़-पोंछकर अलग करना। लम्बे अर्से पर मिलने पर राम ने भी सीता की अग्नि-परीक्षा ली थी। इसी 'मेटॉफर' को लेकर कहना चाहूँगा कि नये प्रतिमानों की धधक में रामकथा को दहने दें। रामकथा तो कुन्दन है और इस अग्नि परीक्षा से तपकर दमक कर खरा, निखरा सोना ही हाथ आयेगा।

—शंभुनाथ

★

आधुनिकता बनाम नये प्रतिमान

—डॉ० रवीन्द्र भ्रमर

समकालीन कविता के सन्दर्भ में 'आधुनिकता' की चर्चा व्यापक रूप से हुई है। इसे एक नये मूल्य और नूतन कला-दर्शन के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। हमारे समाज, साहित्य अथवा इतिहास में आधुनिक युग १८वीं-१९वीं शताब्दी से आरम्भ होता है लेकिन आधुनिकता का जैसा शोर इन दिनों है, वैसा पहले कभी नहीं सुना गया। जान पड़ता है कि हमें अपने आधुनिक होने का एहसास अब हुआ है। आज प्रायः सभी भाषाओं के कवि और लेखक आधुनिकता से उलझ रहे हैं, टकरा रहे हैं और उसे आत्मसात करने का प्रयत्न कर रहे हैं। मजे की बात यह है कि अलग-अलग गुट और सम्प्रदाय (स्कूल) के लेखकों के पास भिन्न प्रकार के दृष्टिकोण और प्रतिमान हैं जिनसे वे आधुनिकता को देखने-परखने का प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि आधुनिकता की रूप-रचना कई तरह के रंगों और कई पैटर्न में हो रही है। वास्तविकता यह है कि आधुनिकता के विषय को समझने और समझाने की जितनी कोशिश की गई है, उतना ही उसे उलझा दिया गया है।

कुछ लोग 'आधुनिकता' को कोरा 'फैशन' मानते हैं, वेश-भूषा और आहार-व्यवहार की आधुनिक पद्धतियों तक ही उसे सीमित रखना चाहते है। डॉ० कुमार विमल के शब्दों में 'विचार ही नहीं, सामाजिक रहन-सहन की दृष्टि से भी आधुनिकता का अर्थ है—पश्चिमी रंग-ढंग में रंगना। जैसे—पुतली की जगह स्कर्ट का व्यवहार, भोजन-कक्ष में आसनी या पीढ़ा के बदले 'डाइनिंग टेबुल' का प्रयोग, बाल-बच्चों को 'मम्मी-डैडी' कहने की शिक्षा देना इत्यादि। मतलब यह कि जिस देशी मुर्गी की बोल जितने अधिक विलायती होंगे, वह उतनी ही अधिक 'आधुनिक' होगी। इस प्रकार के लोग छुरी-काँटों से खाते हैं, नये डिजाइन के सूट और टाई पहनते हैं। लेकि., इनके मन और मस्तिष्क के द्वार प्रायः बन्द होते हैं। नव-युग का नया वैचारिक और सांस्कृतिक प्रवाह इनके सिर से बहकर निकल जाता है। काव्य-

कला के क्षेत्र में इस प्रकार के फैशन-परस्त शिल्पवादी और चमत्कारवादी होकर रह गये हैं।

काव्य-कला के क्षेत्र में अधिकांश लोग अस्पष्टता, जटिलता और अश्लीलता को 'आधुनिकता' के नाम पर पेश करना चाहते हैं। कला और चिन्तन के क्षेत्र में उलझन और भ्रान्ति पैदा करना इनका लक्ष्य है। अत्याधुनिक कहे जाने वाले अनेक कलाकारों के विरूप या अरूप या चित्र आधुनिकता के नाम पर बहुधा अस्पष्टता और कौतूहल का ही प्रभाव अंकित करते हैं। एलेन गिन्सबर्ग अथवा अन्य 'बीट' कवियों की कविताएँ आधुनिकता के बहाने अश्लीलता और विद्रूपता का उदाहरण प्रस्तुत करती है। अश्लीलता और फूहड़पन की यह प्रवृत्ति एक सीमा तक समकालीन हिन्दी कविता में भी पनपी है। बुभुक्षित पीढ़ी, श्मशानी पीढ़ी और विद्रोही पीढ़ी आदि नामों से प्रकाशित होने वाली कुछ 'अनियत कालीन लघु पत्रिकाएँ' इस प्रवृत्ति को रेखांकित करके बुझ-सी गई हैं।

आधुनिकता की धारणा को व्यक्ति और व्यक्तिगत अनुभूति से भी जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने निजी और एकांत अनुभवों के आधार पर सोचने-समझने और अपने व्यक्तिगत सत्य का कला-माध्यमों में मूर्त करने की पूरी छूट है। शर्त यह है कि ऐसा व्यक्ति कलाकार विचारों और अनुभूतियों में एकदम नया और ताजा हो और अपनी अभिव्यक्ति में वह बेहयाई अथवा असामाजिकता की हद तक ईमानदार हो। इस दृष्टि से विचार और अनुभूति के नएपन, ताजगी और उनकी बेलाग अभिव्यक्ति का नाम ही आधुनिकता है। इस विचारधारा के कवि—लेखकों ने व्यक्ति-सत्य और भोगे गए यथार्थ के नाम आधुनिकता को विकलांग रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष और समाज शास्त्रीय आधार के बिना आधुनिकता को समझना कठिन है। इतिहास हमें काल दर्शन की दृष्टि देता है। समाज-शास्त्र हमें वह कसौटी देता है जिस पर हम सभ्यता और सामाजिक विकास की परख करते हैं, ऐतिहासिक दृष्टि और समाज शास्त्रीय बोध के अभाव में आधुनिकता की जाँच-पड़ताल निरर्थक रहेगी। सभ्यता और सामाजिक विकास का इतिहास साक्षी है कि मनुष्य बराबर प्रगति करता आ रहा है। अँधेरी घाटियों, बीहड़ जङ्गलों और भयावह मार्गों को पार करता हुआ, मानवता का कारवाँ आज एक ऐसे प्रशस्त और उर्वर क्षेत्र में आ पहुँचा है

जहाँ प्रकाश है, अनुशासन और व्यवस्था है और मनुष्यत्व की ऊर्ध्वमुखी प्रतीति है। जीवन, समाज, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य, कलादर्शन, विज्ञान आदि नाना क्षेत्रों में मनुष्य ने बहुमुखी उन्नति कर ली है। मानवता की इस गति-प्रगति का यथोचित ज्ञान हमें होना चाहिए। कौन-सी विचारधारा, कौन-सा दर्शन अथवा कौन-सा राजनीतिक सिद्धांत कितना ग्राह्य है और कितना अग्राह्य ? सभ्यता विकास के किस विन्दु पर पहुँच गई है और जीवन को श्रेष्ठतर वनाने के उपादान कौन-से हैं ? विज्ञान ने कौन-सा जादू कर दिया है कि हमारे वैचारिक जगत में निरन्तर क्रांति हो रही है ? 'आधुनिकता, को समझने के लिए हमें इन प्रश्नों से जूझना होगा।

आधुनिकता को रेखांकित करने के लिए मध्ययुगीनता बड़े मार्के का शब्द है। इतिहास में जिसे मध्ययुग कहते हैं उसकी जीवन दृष्टि और विचार पद्धतियों के विरुद्ध आधुनिकता की धारणा क्रमशः विकसित हुयी। आधुनिकता में जीवन और जगत् के पुराने पड़ते हुए मूल्य के विरुद्ध बराबर धर्म युद्ध किया है। निरन्तर परम्पराओं और निर्जीव रूढ़ियों को साहसपूर्वक अस्वीकार किया है और नये किन्तु लोक मङ्गलकारी मूल्यों की स्थापना भी की है। आज जो व्यक्ति अपने-आपको आधुनिक कहना चाहता है, जिसे आधुनिकता की तलाश है उसके लिये केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि वह आधुनिक युग में जी रहा है, आधुनिक काल में पैदा हुआ है। आधुनिक बनने और आधुनिकता को प्रमाणित करने के लिए एक बड़ा मूल्य चुकाना होगा—

"कबिरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे, भुइं धरै, तब पइठै घर माँहि ॥"

आधुनिकता की उपलब्धि जोखिम का व्यापार है। आधुनिकता से तादात्म्य स्थापित करने के लिए जड़ परम्पराओं और निर्जीव रूढ़ियों से ग्रस्त 'अहं' को विसर्जित करना होगा। स्वर्ग और नरक—जैसे धार्मिक अंधविश्वास, जाति-प्रथा जैसी सामाजिक रूढ़ि, भाग्यवाद और साम्प्रदायिकता जैसी संकुचित जीवन-दृष्टि, सबको तिलांजलि देनी होगी। आधुनिकता वैज्ञानिक और बौद्धिक दृष्टिकोण का नाम है। मानव और समाज की निरन्तर प्रगति उसका मूल लक्ष्य है। कला और साहित्य का क्षेत्र हो अथवा व्यक्तिगत आचरण की दुनिया, आधुनिकता सामाजिक, वैज्ञानिक एवं मानवतावादी आयामों में प्रतिफलित होती है।

आधुनिकता कोई स्थिर मूल्य नहीं है। वह एक निरन्तर गतिशील जीवन दृष्टि है। वह मानवता की जय-यात्रा का एक ऐसा प्रतीक है जो दिग्विजय के अश्व की भाँति आगे-आगे भागा जा रहा है और अपने युग की गति के साथ-साथ चलने का अभिलाषी मनुष्य उसका अनुधापन कर रहा है—

"आह, ठहरो, दिग्विजय के अश्व !
हवा से भी, लहर से भी, आयु के छिन-पहर से भी—
बहुत आगे, बहुत आगे तुम बराबर कहीं—
अगले मोड़ पर हो, और मैं चिल्ला रहा हूँ—
आ रहा हूँ ! आ रहा हूँ ! तुम जहाँ तक हो,
वहाँ तक हाथ ये फैला रहा हूं।
आह, ठहरो, दिग्विजय के अश्व !

(केदारनाथ सिंह : तीसरा सप्तक)

"आज हम भारत से रूढ़ सामन्तीय संस्कारों को खत्म करने पर जुटे हैं जो वर्णाश्रम धर्म और नारी की दासता की वजह से ग्राम-विकास को रोकते हैं, शहरों में बड़े-बड़े भारी उद्योगों को कायम रखने पर जुटे हैं जो समाजवाद के लिये इस्पात, बिजली, जेट वायुयान, औद्योगिक माल पैदा करेंगे। आज के खल व्यक्ति नहीं, समूह और वर्ग हैं; आज के सन्त भी सामाजिक दार्शनिक हैं। किन्तु हमारे वर्त्तमान इतिहास को एक महान् परम्परा जोड़ं हुये हैं जो एक निरन्तर जीव प्रक्रिया है। तुलसी को आधुनिक वातायन से देखने सुनने समझने का मतलब है, अपने भारत की बहुसंख्यक जनता के परम्परागत आदर्शों तथा जीवन-मूल्यों की ठोस चुनौतियों का अध्ययन !"

'तुलसी : आधुनिक वातायन से' :रमेश कुन्तल मेघ

"जासु विलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥"

× × ×

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ पर नारि न हेरी॥"

राम द्वारा यह स्वीकारोक्ति ही राम की विशेषता है। कुण्ठा से मुक्त व्यक्तित्व ही आदर्श की प्रतिष्ठा करता है। राम सदैव कुण्ठा-मुक्त रहे। उन्होंने मन में किसी प्रकार की गाँठ बँधने न दी।

सीता के प्रति आकर्षण धारण करते हुए भी मर्यादित रूप में वे सभी कार्यों का सम्पादन करते रहे। दिन बीतने पर गुरु की आज्ञा से वे संध्या करने के लिए गए। उस समय प्राची दिशा में उदित शशि की सुषमा सीता के मुख-सी प्रतीत हुई। साम्य की प्रतीति से राम को सुख मिला :—

"विगत दिवसु गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥
प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सियमुख सरिस देखि सुखु पावा॥"

मन में सीता के प्रति तीव्र आकर्षण होने पर भी राम ने संयम का साथ नहीं छोड़ा, यह थी राम की मर्यादा।

दशरथ ने राम के राज्याभिषेक का निश्चय किया। राम को जब यह सूचना मिली तो तुरन्त वे सोचने लगे :—

"जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥

× × ×

विमल वंस यहु अनुचित एकू। वंधु विहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥'

न्यायप्रिय राम के मन में यह द्वन्द्व उठा कि सब भाई एक समान हैं पर अभिषेक बड़े का हो रहा है। उन्हें यह अनुचित लगा किन्तु परम्परा और रीति के कारण उन्हें वह अभिषेक-प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। यह अंतर्द्वन्द्व उन्हें सालता रहा, पर शील के कारण उन्हें पारिवारिक मर्यादा का पालन करना था। फलतः प्रस्ताव के विरुद्ध वे कुछ कह न सकें। शील राम के चरित्र की प्रमुख विशेषता थी।

कैकेई ने राजा दशरथ से वरदान माँगा। राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास देना दसरथ को असह्य हो उठा। वे मूछित हो उठे।

राम को वनवास की सूचना अप्राप्त थी। राजा के निकट आकर उन्हें दारुण दुःख से युक्त उन्होंने देखा। वे कुछ बतला नहीं पा रहे थे। राम के मन

में एक द्वन्द्व उठा --क्या मुझसे कोई अपराध हो गया है ? राजा का कुछ न बोलना एक चिन्ता का विषय बन गया। राम आत्मविश्लेषण करने लगे :—

"राउ धीर गुन उदधि अगाधू। मा मोहिं ते कछु बड़ अपराधू।
जाते मोहिं न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहिं कहु सतिभाऊ।।"

कैकेयी को शपथ दिलाकर राम ने तथ्य प्रकट करने के लिए निवेदन किया। उन्हें जैसे ही वन-गमन का प्रस्ताव ज्ञात हुआ, वे तुरंत प्रस्तुत हो उठे। संकल्प-विकल्प का द्वन्द्व उनके मन में नहीं उठा। पिता की आज्ञा का पालन सर्वोपरि था। अतः विकल्प का प्रश्न ही नहीं था।

वन-गमन के प्रसङ्ग में सीता को साथ ले जाने के प्रश्न पर राम अन्त-र्द्वन्द्व से ग्रसित हो उठे। वे वन की कठोर स्थिति से परिचित थे। इसीलिए वे चाहते थे कि सीता घर पर ही रहें। सीता साथ में जाने के लिए विकल थीं। ऐसी स्थिति में राम ने विवेक से निर्णय लिया। पहले उन्हें उन्होंने समझाया :—

"हंसगवनि तुम नहिं वन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू।।"

किन्तु जानकी ने घर रहना स्वीकार नहीं किया और वे साथ ले चलने का अनुरोध करती रहीं। अंततः राम को मानना पड़ा कि हठपूर्वक सीता को घर पर छोड़ना अनुचित होगा। उन्हें साथ ले चलने की आज्ञा ही सङ्गत है : —

"देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहीं राखिहिं प्राना।।
कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा। परिहरि सोचु चलहु वन साथा।।"

हठ को अमान्य कर औचित्य को मान्यता देने के कारण ही राम का चरित्र अनुकरणीय बन सका।

राम के वन-गमन के समय सारी प्रजा शोक-विह्वल हो उठी। उनके साथ पुरजन-परिजन भी कुछ दूर तक गये। राम ने धर्मोपदेश देकर उन्हें लौट जाने की सीख दी, किन्तु लोग प्रेमवश लौटने को तैयार नहीं हुए। उनका प्रेम और अपना कर्त्तव्य स्मरण कर राम अंतर्द्वन्द्व युक्त हो उठे। फलतः वे असमंजस में पड़ गये।

"किये धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेमवस फिरहिं न फेरे।।
सीलु सनेह छाँड़ि नहि जाई। असमंजस बस भे रघुराई।।"

राम का शील और स्नेह ही 'असमंजस' का कारण था। अंत में विवेक ने राह प्रगट की और वे सबको छोड़कर आगे बढ़ गये।

केवट ने पार उतारा था। उसे उतराई के रूप में कुछ देना था। राम के पास देने योग्य कोई भौतिक पदार्थ नहीं था, अतः वे परिस्थिति की विषमता के कारण बड़े संकोच में पड़ गए :—

"केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहिं सकुच यहि कछु नहिं दीन्हा।।"

उनके इस संकोच का अनुमान कर उनकी प्रिया जानकी ने मुदित मन से 'मनि मुन्दरी' उतारकर राम को सौंप दिया :—

"कहेउ कृपालु लेहि उनराई। केवट चरन गहे अकुलाई।।"

चित्रकूट में राम को यह बराबर अनुभव होता रहा कि वन में आनेके कारण सीता और लक्ष्मण को कष्ट भोगना पड़ रहा है। इस अनुभूति से वे उन्हें हर प्रकार सुखी रखने का उपक्रम करते रहे। राम को अवध का, माता-पिता, परिजन-पुरजन का स्मरण भी आता रहा। उनके मन में विविध-भावों का द्वन्द्व चलता रहा। राम ने पुनीत कथा कहकर अपना व सीता तथा लक्ष्मण का रंजन किया और अंतर्द्वन्द्व की पीड़ा से मुक्ति प्राप्त की :—

"सीय लखन जेहि विधि सुख लहहीं।
सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं।।"

"जब-जब रामु अवध सुधि करहीं। तब-तब वारि विलोचन भरहीं।।
सुमिरि मातु-पितु परिजन भाई। भरत सनेहु सीलु सेवकाई।।
कृपासिंधु प्रभु होंहि दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ विचारी।।
लखि सिय लखनु विकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहिं अनुसर परिछाहीं।।
प्रिया बन्धु गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपालु भगत उर चंदनु।।
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनु सुख लहहिं लखनु अरु-सीता।।"

भरत के आगमन पर राम के मन में एक अन्तर्द्वन्द्व उभर पड़ा था। एक ओर पिता को दिये गये वचन का पालन होना था और दूसरी ओर भरत के प्रेमवश उनके द्वारा लौट चलने का प्रस्ताव सुनना था तथा भरत को संतोष देना था। यहाँ भी विवेक ने मार्ग दिखाया। चरण-पादुका देकर उन्होंने भरत को भी संतुष्ट किया और वचन-पालन में व्यवधान भी नहीं आने दिया।

सीता-हरण, लक्ष्मण-शक्ति आदि के अवसरों पर भी अंतर्द्वन्द्व ने राम को ग्रसा किंतु धैर्य और विवेक के बल उन्होंने परिस्थितियों पर विजय प्राप्त की।

सीता की अग्निपरीक्षा भी अंतर्द्वन्द्व का ही परिणाम था। रावण के घर से सादर सीता को लाया गया। सीता के प्रति प्रेम और लोकमत के प्रति निष्ठा का जो द्वन्द्व प्रगट हुआ, उसका ही समाहार था, 'अग्निपरीक्षा का विधान'।

इन घटनाओं से स्पष्ट है कि शील, धैर्य और विवेक के कारण राम ने अंतर्द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त की और मर्यादा का प्रकाशन किया। आज भी अंतर्द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त कर आदर्श की प्रतिष्ठा की जा सकती है।

★

'रामचरित मानस' में राम परम ब्रह्म हो जाते हैं और राम कथा को दर्शन तथा धर्म तथा नीति का पूरा वातावरण मिल जाता है। 'मानस' में मिथकीयकरण तथा पौराणिकीकरण की प्रक्रिया पूरी हो जाती है तथा रामचरित ग्राम्यीकरण की पारिवारिक, ग्रामीण, सामाजिक, राष्ट्रीय चेतना का सूर्य हो जाता है। इस कृति के पूर्व तुलसी के प्रेम-जीवन में कोई गहरा आघात अवश्य लगा है जिसने उन्हें संन्यासी बनाया, पूर्णतः आदर्शवादी-आध्यात्मवादी बनाया। उस कृति के पूर्व उन्होंने गुरू दीक्षा ले ली है तथा स्वाध्याय का सारा ब्रह्मरस पी लिया है। चित्रकूट में सन्तों और भक्तों के सम्पर्क-साहचर्य का तुलसी ने इस महाकाव्य में आदर्शीकरण कर डाला है। फलस्वरूप रामराज्य की यूतोपिया झिलमिला उठी है। इस कृति में बालकाण्ड की प्रधानता से भी निष्कर्ष निकलता है कि सन्त तुलसी राम को अवतार, शैव-वैष्णव संस्कृति के समन्वयकर्त्ता, नरोत्तम और चक्रवर्ती, लोकमंगलकर्त्ता और धर्म विजयकर्त्ता, नर और नारायण होने को सारी सांस्कृतिक-सामाजिक प्रक्रिया को सुलझाते हैं। इस कृति से तुलसी एक आह्वानकर्त्ता हो जाते हैं।"

—'तुलसी : आधुनिक वातायन से' : रमेशकुन्तल मेघ

राम कथा—मानवतावादी परिदृष्टि में*

—डॉ० चन्द्रविजय चतुर्वेदी

राम एक व्यापक तत्व। इस तत्व के दर्शन की विविध कथायें। विविधता में एकता के राम को उनके एक दास तुलसी ने अपने मानस में ऐसे कौशल के साथ चित्रित किया कि गङ्गा की धारा की तरह उस मानस की अजस्र धारा से इस देश की सांस्कृतिक भूमि निरन्तर चार सौ वर्षों से सींची जा रही है।

राम, राम के तुलसी, तुलसी का मानस, मानस चतुश्शती के वर्ष, इन वर्षों में इस देश भारतवर्ष की सांस्कृतिक भूमि। ये सारी इकाईयाँ क्या एक रसता की अनुभूति दे पाये! मन रसना के चटोरवृत्ति की दृष्टि ने राम रावण को अधिभौतिकवादी वैज्ञानिक संस्कृति के बाने में ढूंढ़ना चाहा और दोनों एक साथ मिल भी गये सीता के स्वयंबर में नहीं प्रयाग में भरद्वाज आश्रम में अध्ययन करते हुए परस्पर अनन्य मित्र। राम—क्षत्रियकुमार धीर गम्भीर, कवि की तरह चिन्तन शील। रावण—ब्राह्मणकुमार—उदात्त उग्र। राम के इस प्रकृति पर रावण को विस्मय है वह राम से पूछता है—

"जब लौटोगे अवधपुरी तुम
हाथों से शासन दण्ड रहेगा
तब कैसे तुम कवि जीवन निर्वाह करोगे?
....

प्रस्तर प्रासादों से दूर
कहीं कुटिया में होगे जो धुनी रमाते
तो राम! यह ब्राह्मणकुमार!
तेरे महायज्ञ में पौरोहित कर्म करेगा।
.........:

पर राम भ्रमित हूँ मैं इस क्षण

---

* लेखक के अप्रकाशित खण्डकाव्य से।

तेरे धमनी में
युग-युग से भोगे राजशक्ति का रक्त वह रहा
कैसे मैं यह सहज मान लूँ
जिस रघुकुल में अब तक
राजा ही राजा जन्मे हों
उसी वंश में अरे राम तुम
संन्यासी बन जन्मोगे।

पर रावण के समक्ष ही राम सेत्राव्रत की प्रतिज्ञा करते हैं। राम अयोध्या लौटते हैं। रावण लङ्का लौटता है जीवन के प्रति, ज्ञान के प्रति नई परिदृष्टि लेकर। लङ्का यक्षराज की निरंकुश अज्ञानता और पोंगापन्थी में आकण्ठ डूबा है। प्रकृति के प्रकोप को समुद्र के तूफान को वहाँ के पुरोहित देवता के कुपित होने का परिणाम मानते हैं इसके लिए नरमेध यज्ञ का आवाहन किया जाता है; रावण इसका विरोध करता है। अन्ततः राजकोप के कारण उसे बन्दी बनाया जाता है। यक्षराज की कन्या सुन्दरी मन्दोदरी रावण के पांडित्य का आदर करती है जो धीरे-धीरे प्रणय में परिणत हो जाता है वह रावण मुक्त करा देती है। रावण ज्ञान पिपासा से व्याकुल प्रकृति के गूढ़ तत्वों की खोज में निकल पड़ता है। वह हतप्रभ है—

"जीवन से यह कैसा खिलवाड़ प्रकृति का
जिसका वाह्य रूप है
इतना कोमल
सरल मधुरतम
उसके ही अन्तः में कैसा महाप्रेत यह
जीवन में सुख के बदले दुःख भरता जाता
मधुर स्वप्न को पल भर में कर चूर-चूर
यों आर्त्तनाद का सर्जन करता
एक ओर तो जीवन का भण्डार अक्षय है
और दूसरी ओर मृत्यु का
अरे घिनौना साधन भी क्यों ?
कैसा है यह रूप प्रकृति का
आँचल में अमृत विष का भण्डार छिपाये
कभी मधुर हासों-परिहासों में

तारों के झिलमिल आँचल में
मन्द मन्द मुस्काती क्रीड़ा करती
जीवन को अमृत पान कराती
मधु से मधुतम जीवन देती
रूप गध रस सिक्त
वना मानव जीवन को
जीवन दायी जननी सी
कभी प्रेम रस बरसाती
प्रेयसि सी क्रीडा निमग्न
मानव मन को करती सहज मग्न
फिर महाप्रेत का उत्पीड़न भी
मानवता का आर्त्तनाद
यह कुन्दन भी क्यों !

विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में वैज्ञानिक अगस्त्य ऋषि के आश्रम में वह अपनी अभिलाषा रखता है—

"मैं प्रकृति सुन्दरी के अन्तंमन
के दर्शन का अभिलाषी
जो जीवनदायी जननी है
पर महामृत्यु का कारण भी
गुरुवर्य !
आँखों से ललित सुघर प्रकृति यह
दूर-दूर तक फैला ब्रह्माण्ड अलक्षित
कव कैसे विज्ञान-ज्ञान
के आयामों में वँधकर
सहज रूप मे लौकिक होगा ।

अगस्त्य से विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करके रावण हिमालय पर आद्य वैज्ञानिक भूतनाथ शंकर से विज्ञान की हर विधा हर आयाम में पारंगत हो लंका को लौटता है। अपने वैज्ञानिक ज्ञान से रावण अपने देश की गरीवी, अज्ञानता, अंधकार को मिटाने में जुट जाता है। लंका में क्रान्ति होती है। शासन दण्ड रावण के हाथ में आता है। रावण विज्ञान के सहारे लंका को भौतिक साधनों से सम्पन्न कर देता है। विश्व का सारा स्वर्ण लंका की ओर

खिंच आता है। सुख सम्पन्नता शीघ्र ही अपनी चरम सीमा की ओर अग्रसर होती है। रावण फिर भी शान्त है उसका दम्भ उसको वैज्ञानिक शक्ति सम्पूर्ण विश्व को अपने अधिभौतिकता के दायरे में खींचना चाहता है। रावण उत्तर की ओर बढ़ता है।

उत्तर की वशिष्ठ-विश्वामित्र की संस्कृति को जिसे राम एक नया रूप देने के उपक्रम में लगे थे रावण के दूतों के सम्पर्क में आते ही 'विद्युत शाक' की अनुभूति होती है। रावण के विज्ञानवाद से जन्मे भोगवाद से राम को क्षोभ होता है।

अरे विज्ञान !
उसे लौटा दे !
निज की सहज संस्कृति
लौटा दे !
जीवन के उद्द`श्यों के प्रति
सत अवधारण विवेक
राम को रावण के विज्ञान से मानवतावादी परिदृष्टि की अपेक्षा है
पहले बादल बर की रेखा पर
सोंधी उत्तांत में
प्रेयसि के काया की गन्धानुभूति में
आनन्दातिरेक
कवि, प्रेमी कलाकार की भाषा में
या मानवता की रक्षा में
पैशाचिक शक्ति से जूझ रहे
मानव के मन की भाषा में
क्या परिभाषित होगा
उसका विज्ञान अलौकिक।

राम मूलतः मानवतावादी हैं। वे अवध राज्य को प्रजातान्त्रिक रूप देकर सीता और लक्ष्मण के संग आर्य, आर्येतर और अनार्य जातियों के विकृत मान्यताओं को उस समय दूर करने में लगे होते हैं जब रावण का भोगवाद अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा होता है। राम की मान्यता है।

कोमल भावों के बदले
विज्ञान त्याज्य है

ज्ञान त्याज्य है
नहीं स्पृहा है तत्व ज्ञान की
आत्म ज्ञान की
मानव तो विज्ञानी
बस कोमल भावों का अभिलाषी

दक्षिण से भोगवाद से ग्रस्त मानव शान्ति की खोज में उत्तर की ओर आ रहे थे। उत्तर भी मुक्त नहीं था वह ग्रस्त था आध्यात्मिक वैभिन्न से। राम आध्यात्मिक तत्वों के परिमेयकरण के लिए संघर्षरत थे जिसके लिए एक ही विकल्प था मानवतावाद—

हम आर्य देव
वे आर्येतर
वे अनार्य
में है दानव घृणित पातकी
यह घृणा धारण प्रतिहिंसा
यदि मन में
या कहीं चित्त में
ये ही भाव रहे
तो सारा जप तप
निशिदिन वेदों का पारायण
यह यज्ञ हवन
सब व्यर्थ तुम्हारा
हम आर्य वाद में
पहले मानव
उससे भी पहले जीवमात्र हूँ
यदि मानव रहना
जीवों से है घृणा सिखाता
तो मैं केवल जीव
न मानव मैं हूँ
जो आर्य कहें
बस आर्य श्रेष्ठ हैं
सब आर्येतर हीन घृणित हैं

मत बोलें कि राम आर्य है
मैं तो बस मानव हूँ।

अभी राम विशृङ्खल आध्यात्मिक तत्वों के परिमेयकरण को अन्तिमरूप नहीं दे पाये थे कि रावण के वैज्ञानिक इगो से एक नया सङ्कट भोगवादी आध्यात्म का उठ खड़ा हुआ जिसे मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन होने लगा। राम को एक साथी की आवश्यकता थी। वह साथी हो सकता था रावण। राम ने निश्चय किया कि विज्ञान के भोगवाद से मानवतावाद की रक्षा केवल विज्ञान के आध्यात्मीकरण से ही सम्भव हो सकता है। राम, लक्ष्मण और सीता के साथ दक्षिण की ओर मानवतावाद का मंत्र फूँकते हुए बढ़ते हैं। भोगवाद से उत्पीड़ित लंका के विभीषण राम के यज्ञ में शामिल होते हैं। दलित वर्ग के हनुमान, जाम्ववान आदि राम के साथ आगे आये। मानवता के कल्याणार्थ ही वैज्ञानिक शक्तियों के प्रयोग के लिए राम ने रावण का भी आवाहन किया—आध्यात्मिक तत्वों के परिमेयकरण (रेशनलाइजेशन) एवम् विज्ञान के आध्यात्मिकरण के यज्ञ में। जिस लंका को रावण ने सोने से पाट दिया था उस देश के मानसिक उत्पीड़न से लंका जलने लगी, स्वर्ण पिघलने लगा। अन्तत. राम के उद्‌बोधन से अपने देशवासियों के उत्पीड़न को रावण को पहचानना पड़ा और अन्त में दोनों मित्र मानवता के साये में गोदावरी के तट पर गले मिलते हैं।

धर्म और राजनीति का रिश्ता विगड़ गया है। धर्म दीर्घ-कालीन राजनीति है और राजनीति अल्पकालीन धर्म। धर्म श्रेयस् की उपलब्धि का प्रयत्न करता है, राजनीति बुराई से लड़ती है।

तुलसी की रामायण में निश्चय ही सोना, हीरा, मोती वहुत है, लेकिन उसमें कूड़ा उच्छिष्ट भी काफी है। इन दोनों को धर्म से इतना पवित्र बना दिया गया है कि भारतीय जन को विवेक दृष्टि लुप्त हो गई है।......उद्देश्य है कि भारतीय जनता वह विवेक दृष्टि पुनः प्राप्त करे।

—डा० राममनोहर लोहिया

आधुनिक संदर्भों से जूझते राम

—डॉ० सन्त बख्श सिंह

आज के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह आधुनिक परिवेश की स्वाभाविक उपज है। जो भी साहित्य आधुनिक भावबोध से दूर होगा उसे आलोचक वायवी कहकर उसका तिरस्कार करेगा। तुलसी का 'मानस' भी कुछ इसी प्रकार गलत ढंग से उपेक्षित होता जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि मानस की आधुनिकता को परखा जाय।

'मानस' अतीव आधुनिक महाकाव्य है। वह मात्र भक्तिकालीन सन्दर्भों की ही उपज नहीं है, बल्कि उसके कवि का बोध युगव्यापी है। आधुनिक है। उसकी राम विषयक आधुनिकता पर ही विचार करने से ज्ञात हो जाता है कि कवि का दृष्टिबोध कितना अधिक युगव्यापी है।

तुलसी के राम का परिवेश आज से भी भयावह है। वे अकारण ही कैकेयी के ईर्ष्या-पात्र बनते हैं, वन जाने का आदेश पाते हैं और पत्नी सीता के अपहृत हो जाने पर रावण से संघर्ष के दौरान सेवक भाई लक्ष्मण के प्राणों को किसी प्रकार बचा पाते हैं। यह स्थिति अतीव भयावह है और अत्यन्त निराशाजनक है। लेकिन धीर राम विचलित और निराश नहीं होते हैं। उनके मन में कैकेयी के प्रति लेशमात्र भी क्रोध नहीं, भरत से द्वेष नहीं तथा आदेश देने वाले पिता की आज्ञा सदैव शिरोधार्य हैं। अपहृता सीता के लिए वे खिन्नमन अवश्य हैं; लेकिन वे प्रयत्न में नहीं चूकते हैं। यही स्थिति लक्ष्मण के मूर्छित होने में भी देखी जा सकती है। वे सर्वत्र प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। आज के परिवेश की जटिलता की बात बहुत की जाती है लेकिन क्या राम के चतुर्दिक् व्याप्त परिवेश कम जटिल और भयावह है ? वे भी सुविधापूर्वक आज की पीढ़ी की तरह समस्याओं के समक्ष आत्मसमर्पण कर सकते थे; समय, समाज और व्यक्तिगत सम्बन्धों की प्रतिबद्धता (कमिट्मेन्ट) को नकार सकते थे; लेकिन वे ऐसा नहीं करते। वे धैर्यपूर्वक विवेक से काम

लेकर अपने प्रयत्नों में सफल होते हैं और अन्ततोगत्वा वे अयोध्या का राज्य-भार ग्रहण करते हैं।

पारिवारिक विघटन आज का सबसे बड़ा संक्रामक रोग है। गौर करें, राम प्रारम्भ में ही पारिवारिक सम्बन्धों की तेजधार पर से गुजरते हुए दिखाई पड़ेंगे। ऐसी स्थिति में थोड़ी भी अनवधानता में सारा परिवार-तन्तु टूटकर बिखर जाता; लेकिन राम सबको एक सूत्र में बाँधे रखते हैं। सौतेली माँ के आग्रह पर राम को वनवास का आदेश होता है। माँ कौशिल्या के हृदय पर क्या बीती होगी ? लेकिन राम सारी स्थिति को सँभाल लेते हैं। पिता की आज्ञा का पालन करके कैकेयी की इच्छा पूर्ति करते हुए माँ कौशिल्या की भी आज्ञा पा लेते हैं, भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के अनुरोध को स्वीकार करते हुए उनके साथ वन चले जाते हैं। इस प्रकार उनका पूरा परिवार एक सूत्र में ही बद्ध रह जाता है; वरना बड़ी ही आसानी से आज की तरह पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर सकते थे जिसका दुष्परिणाम हो सकता था कि राम और सीता अलग हो जाते और परिवार बिखर जाता; लेकिन उस परिवार को एक सूत्र में बाँधे रखने का सारा दायित्व निर्वाह राम भली प्रकार करते दिखाई देते हैं।

राम को कुंठाग्रस्त हो जाने की अधिक संभावनाएँ थीं। राज्य-लिप्सा कदाचित् सबसे बड़ी लिप्सा मानी जा सकती है। पारिवारिक परम्परा में जैसे ही राम के राज्याभिषेक होने की बारी आती है, उन्हें वनवास का आदेश दे दिया जाता है। व्यक्ति की सामान्य इच्छाओं के दमन का इससे बड़ी कौन दूसरी दुर्घटना हो सकती है। राम इसे भी पचा जाते हैं। नवविवाहिता धर्म-पत्नी का सुखविलास जो राम को प्रासादों में सुलभ था; वह कठोर पथ एवं निशाचरों से भरे वनों में भी दुर्लभ हो जाता है और उनकी 'मृगनयनी' रावण द्वारा हर ली जाती हैं। आज का नाजुक प्रेमी मन टूट जाता, विक्षिप्त होकर आत्महत्या कर लेता; लेकिन वे थोड़े से विचलित होकर भी कुंठित नहीं होते। बिना किसी आक्रोश एवं कुंठा के वे अयोध्या वापस आते हैं और प्रजा हितकारी कार्यों में जुट जाते हैं।

राम व्यक्तिवाद (इन्डिविडुअलिज्म) के विरोधी एवं समाजवाद (सोश-लिज्म) के समर्थक से लगते हैं। वे उसी व्यक्तिगत 'आचार' की स्वीकृति देते हैं जो रुचि अनुसार अवश्य हो, " स्वारथ सहित" भी हो; लेकिन सबके

स्नेह पर आधारित हो। व्यक्तिगत आचरण की स्वतंत्रता वहाँ तक है जहाँ तक समाज का हित बाधित न होता हो।

ऐसा स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि तुलसी के राम उन तमाम विसंगतियों एवं सन्दर्भों से जीवन पर्यन्त जूझते रहे, जिनसे आधुनिक मानव-मन भिड़ने में कतराता है। तुलसीदास ने सफलतापूर्वक यह चित्रित कर दिखाया है कि उनके राम आधुनिक परिवेश को 'जीने' और 'झेलने" वाले सही और विश्वसनीय व्यक्तित्व हैं जो आज की पीढ़ी के लिए भी अनुकरणीय हैं।

"राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन रामराज्य? रामराज्य बिल्कुल दूसरी बात है। गाँधी को राम से प्रेम था, उचित ही है। राम जैसे व्यक्ति से प्रेम किया जा सकता है। प्रेम भारी रहा होगा। उनके रग-रग में भर गया था। गोली लगी गोडसे की, तो, न माँ की याद आयी, न पिता की याद आयी, न गाँधीवादियों की याद आयी। याद आयी राम की।···राम पर उनका बहुत प्रेम था और प्रेम के वश वे रामराज्य की बातें करने लगे थे। लेकिन, राम से प्रेम ठीक है, रामराज्य से प्रेम खतरनाक बात है। रामराज्य पूँजीवाद से भी पिछड़ी हुई व्यवस्था है, सामन्तवाद है। रामराज्य भविष्य की योजना नहीं है। अतीत की, पिछड़े हुये, बीते हुए, जा चुके समाज की व्यवस्था है। रामराज्य नहीं लाना है हमें, लाना है भविष्य का राज्य। रामराज्य तो बीत गया। एक तो हम उसे लाना चाहें तो नहीं ला सकते। और हम ला सकते हों तो हमें कभी लाने का विचार भी नहीं करना चाहिये। क्योंकि रामराज्य तो पिछड़ा हुआ, आज से भी बदतर समाज व्यवस्था है। करोड़ों-करोड़ों गुलाम हैं। स्त्रियों की इज्जत कितनी की गयी होगी, वह सीता की इज्जत से पता चल जाता है। एक साधारण से आदमी की आवाज पर सीता को उठाकर फेंका जा सकता है जंगल में। साधारण स्त्री की क्या हैसियत रही होगी?"

—'अस्वीकृति में उठा हाथ' : आचार्य रजनीश

लक्ष्मण और आज का ऐंग्री यंग मैन

—डॉ० विभुराम मिश्र

आज का नवयुवक क्रोधी है, विद्रोही है। पहले की तरह उतना मर्यादित, अनुशासित और आज्ञाकारी नहीं। भारत के संदर्भ में यह बात और भी सही है। वह ऐसा क्यों हो गया है? क्या उसका ऐसा हो जाना ही स्वाभाविक और समीचीन है? वस्तुतः नये युग की नयी प्रतिमा गढ़ने का '४७ का स्वप्न भङ्ग हो चुका है। एसर्ट करने की शक्ति और सङ्कल्प आज श्लथ हो चुके हैं। नवयुवक भरे-पूरे समाज में अपने को खोया-अचीन्हा पा रहा है। उसने जीवन की अर्थहीनता, धुरीहीनता और वेतुकेपन की अनुभूति की है तथा केवल भय, चिंता और मृत्यु का अस्तित्वबोध कर पाया है। वह लोकतंत्र को भीड़तन्त्र और राजनीति को भ्रष्टाचार का पर्याय बनते देख रहा है। किसी भी कीमत पर जीवन की आवश्यक वस्तुएँ न जुटा पाने की नपुंसक निरीहता भी वह भोग और अनुभव कर रहा है। ये ही कारण हैं कि आज उसके तेवर पहले से ज्यादा तल्ख हो गए हैं। मक्कारी और गलत रंगीन ख्वाबों के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया के कारण वह तोड़फोड़ और आगजनी कर रहा है। शायद असलियत की सच्ची पहचान के लिए ही वह नंगा होने पर उतारू है। यह क्रुद्ध नवजवान यूनिवर्सिटी और कॉलेज कैम्पसों, भीड़ भरी सड़कों, बाजारों, रेस्त्राओं, सिनेमाघरों, वसों और सभी घरों में मौजूद है। कहना न होगा कि यही आज के समाज की सर्वाधिक जीवित और जागरूक इकाई है। नजरों में हिकारत भरे वह तथाकथित व्यवस्था से टकरा रहा है। पर यह टकराव अधिकतर सिर के बल ही है।

वह युग भी इसी प्रकार अनास्था, भटकाव, दिशाहीनता और मूल्यों के संक्रमण का था, जब कि तुलसी ने 'मानस' की रचना की थी। 'मानस' अलसता, ग्लानि तथा क्लांतिपूर्ण वातावरण के विरुद्ध एक प्रकम्पन था। वह विघटित जीवन-स्थितियों तथा युग की विरूपता का प्रतिफलन था। नित्य-प्रति के समस्यासंकुल सर्वसाधारण के जीवन की वास्तविक अनुभूतियों से

अनिवार्य अनुप्रेरणा ग्रहण कर 'मानस' लोकन्याय एवं समताव्यंजक आदर्शों-सिद्धांतों की आदर्श परिकल्पना है। ध्वस्त सांस्कृतिक विरासत, असङ्गति एवं अंतर्विरोध तथा स्वस्थ क्रियाशीलता और निर्णयात्मक बोध का अभाव जैसे कारण 'मानस' की रचना-प्रक्रिया के मूल में अवस्थित थे। तात्पर्य यह कि 'मानस' रचनाकालीन परिवेश और मानसिकता आज के प्रायः समान ही थी। 'मानस' समकालीन प्रतिबद्धता का विचित्र संयोग है, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान जीवन से साक्षात्कार का सफल प्रयत्न है।

यही कारण है कि 'मानस' के बहुत से पात्र हमारे अपने बीच के से लगते हैं। रावणों, विभीषणों, मथराओं और कैकेइयों की कोई कमी आज भी नहीं दिखाई पड़ती। भरत और हनुमान जैसे दृढ़व्रती भी बहुत से हैं, उनकी भक्ति भी संदेह रहित है, हाँ, उनके प्रतिमान और आदर्श युग के अनुरूप बदल गये हैं। राम और सीता भी होंगे अवश्य, बस आवश्यकता है उन्हें प्रकाश में लानेवाले तुलसीदास की। 'मानस' के अनेक पात्रों में सर्वाधिक ध्यान आकृष्ट करते हैं, लक्ष्मण। लक्ष्मण जो आज की आक्रोशी नयी पीढ़ी के प्रतीक से प्रतीत होते हैं। देखना यह है कि लक्ष्मण का व्यक्तित्व आज की युवा पीढ़ी से कितना मेल खा रहा है।

लक्ष्मण शेषनाग के अवतार बताये गये हैं। शेषनाग, जो अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध रहा है। क्रोध में आने पर लक्ष्मण समस्त ब्रह्माण्ड को गेंद के समान उठा कर फेंकने के लिए तैयार हो जाते हैं। सुमेरु पर्वत को गाजर-मूली की तरह काट डालने की बात कहते हैं। लक्ष्मण असहनशील हैं। राम-भक्त होते हुये भी कभी-कभी अनुशासित नहीं दिखाई पड़ते। माता-पिता द्वारा राम को वनवास दिये जाने की आज्ञा का वे तिरस्कार करते हैं और पिता को बहुत बुरा-भला, यहाँ तक कि पत्नी का गुलाम तक कह देते हैं। भरत को ससैन्य वन आते सुनकर क्रोध से उबलने लगते हैं और आक्रामक शत्रु भरत का सर कुचल देने के लिए बार-बार राम से अनुमति माँगते हैं। अपनी शक्ति पर लक्ष्मण का कठोर व्यंग्य सुनकर परशुराम क्रोध से तिल-मिला उठते हैं और बालक जान कर ही किसी तरह उन्हें क्षमा करने का प्रयास करते हैं। सुग्रीव की करतूतों पर राम की भृकुटी ज़रा सी वक्र हुयी नहीं कि लक्ष्मण का बाण तरकश से धनुष पर आ जाता है। शूर्पणखा को छोटे से अपराध का भरपूर मज़ा लक्ष्मण चखाते हैं, बेचारी नकटी और कनकटी हो जाती है। समुद्र से राम की विनती उन्हें अच्छी नहीं लगती, दे तो अपने

बाहुबल से समुद्र का घमण्ड तोड़ देना चाहते हैं। लक्ष्मण का यह क्रोध, कभी-कभी विवेकहीन क्रोध आज के नवयुवक की उत्तेजना और आक्रोश से कितना अधिक साम्य रखता है।

आज का नवयुवक अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की तलाश में भटक रहा है। उसे अपने इर्द-गिर्द परम्पराओं के शव से चिपटे हुये लोग ही दिखाई दे रहे हैं। वह स्वयं को कितनी झूठी नैतिकताओं, भुलावों और मक्कार छलावों से घिरा संत्रस्त पा रहा है। तथाकथित गरिमामय सांस्कृतिक अतीत जैसे फरेब और आज के जीवन की यांत्रिकता के बीच वह घुट रहा है। बेचारे लक्ष्मण भी आज के नवयुवक की तरह ही व्यक्तित्त्वहीन हैं। अन्तर यही है कि वे ऐसा अनुभव नहीं कर पाते। लक्ष्मण सदैव राम के आश्रित दिखाई पड़ते हैं। राम को तो अपने मर्यादित स्वरूप का निर्वाह करना था, इसी से उन्हें समय-समय पर लक्ष्मण को आगे कर देने की आवश्यकता अनुभव होती थी। एक उदाहरण द्रष्टव्य है। गुरु विश्वामित्र के साथ जनकपुर पहुँचने पर राम के मन में जनकपुर नगरी घूमने की तीव्र उत्कण्ठा होती है। पर मर्यादित राम गुरु से लक्ष्मण को जनकपुर घुमाने की आज्ञा माँगते हैं। अनुभवी गुरु राम के मन की इच्छा ताड़ जाते हैं और प्रसन्नतापूर्वक दोनों भाइयों को नगर देखने की आज्ञा देते हैं। तुलसीदास के शब्दों में लक्ष्मण रामजस पताका के दंड हैं। शेषनाग के समान उनका जन्म ही दूसरों का भार वहन करने के लिये हुआ है। लक्ष्मण की व्यक्तित्वहीनता चरम सीमा पर पहुँची तब दिखाई देती है जब सब कुछ जानते-समझते हुये भी उन्हें सीता को छोड़ कर मायामृग की बनावटी आर्त्तपुकार पर चला जाना पड़ा। यदि आदेश-पालन की मजबूरी आड़े न आयी होती तो कितना बड़ा अनर्थ लक्ष्मण बचा लेते।

इस प्रकार लक्ष्मण के चरित्र के दो पक्ष, उनका क्रोध और उनमें स्वतंत्र, व्यक्तित्व का अभाव, आज की युवा पीढ़ी के चरित्र के समान दिखाई पड़ते हैं। पर यदि तुलसीदास की मनःस्थिति से परिचित होकर उनकी रामकथा का अनुशीलन किया जाय तो स्थिति सर्वथा भिन्न दिखाई पड़ती है। श्रद्धासम्पन्न तुलसीदास जी रामकथा को अन्य रसों से श्रेष्ठ एक विशिष्ट रस मानते हैं—'रामचरित जे सुनत अघाहीं, रस विशेष जाना तिन नाहीं।' इसी रस का निर्वाह और परिपाक सर्वत्र करने की चेष्टा तुलसीदास ने की है। तुलसी के राम असाधारण हैं, राम की लीला नरलीला नहीं नारायणलीला है। भक्तों

के लिए राम परब्रह्म हैं। वे 'विधि हरि शंभु नचावन हारे' हैं। अतः रामकथा में लक्ष्मण या अन्य पात्रों की स्वतन्त्र सत्ता का प्रश्न ही नहीं उठता। लक्ष्मण का क्रोध कहीं भी व्यक्तिगत हित के लिए अथवा स्वार्थ में बाधा पड़ने के कारण नहीं उत्पन्न होता। उनका क्रोध तो राम के ही इच्छानुसार रामत्व का महत्व प्रतिपादित करने के लिए होता है। समय-समय पर लक्ष्मण का क्रोध करना राम के मर्यादापुरुषोत्तमत्व के निर्वाह का साधन बनता है। राम के बदले लक्ष्मण क्रोध में आ जाते हैं और काम बन जाता है, साथ ही लक्ष्मण के क्रोधपूर्ण उद्‌गारों के बाद राम के शांत वचन पाठक को ऐसे मालूम होते हैं जैसे प्रचण्ड धूप में तपता हुआ व्यक्ति सघन कुंजों की शीतल छाया में पहुँच गया हो। कथाकार लक्ष्मण के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की कल्पना ही नहीं करता क्योंकि एक ओर उसे लक्ष्मण को भक्त प्रदर्शित करना है दूसरी ओर संयुक्त भारतीय परिवार के आदर्शानुसार छोटों का विकास बड़ों की छत्रछाया में ही दिखाना है। पर इसके साथ ही लक्ष्मण के चरित्र की गरिमा और रामकथा के अंतर्गत उसकी प्रासंगिकता की ओर संकेत करना भी राम-कथाकार भूला नहीं है। लक्ष्मण का क्रोध एक आवश्यकता है, अनंत रचनात्मक सम्भावनाओं से युक्त क्रोध। लक्ष्मण साधन हैं और उनका व्यक्तित्व समर्पित है, एक महान् लक्ष्य के प्रति। लक्ष्मण से आज के नवयुवक की क्या तुलना? उनका चरित्र समता नहीं, शिक्षा और प्रेरणा ग्रहण करने योग्य है।

●

भविष्य के इस निरवधि विस्तार में कौन-कौन से युग आयेंगे, यह कौन कह सकता है। नित्य नयी सज्जा लेकर नया युग आता है और अपने से भी नये युग के लिये मंच छोड़कर परदे के पीछे चुपचाप चला जाता है। परन्तु जिसने जीवन के शाश्वत सत्यों की पकड़ पहचान ली है वह कभी पुराना नहीं हो सकता। चार सौ वर्षों से आज तक भारतीय संस्कृति की नदियों में न जाने कितनी बाढ़ें आयी हैं, परन्तु तीर के घाटों की भाँति तुलसीदास की प्रतिभा अब भी अपनी कल्याणप्रद स्थिरता वैसी ही सुदृढ़ रखे है।

—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

नारी की आरसी : मानस के हस्ताक्षर

—श्रीमती विद्या पाठक

यह युग मानस के उत्कर्ष का नहीं, विज्ञान, बुद्धि के विलास का युग है। यह युग मानसी एहसासों की मौत का युग है। तो आज के आदमी का एहसास मर गया है और वह उसकी मौत से विकल हो, कल की तलाश में उद्भ्रान्त-सा भटक रहा है. भटका रहा है श्रद्धा की, शतरूपा की संतानों को जो उसकी मंजिल है, उसकी मर्यादा है, उसकी लगाम है, उसकी शक्ति है—उसकी जिन्दगी है। 'परमिसिव-सोसाइटी' के शोर और 'विमन लिब' के कर्णभेदी रोर में 'क्षण को जीने' वाले दर्शन के जगमगाते मूल्यों की चकाचौंध में उसका बीता हुआ कल खो गया है, उसका आने वाला कल अनिश्चित है, उसके पास रह गया है सिर्फ उसका अधूरा बेसुध आज जिसे पूरी तरह से जी लेने के लिए, सफल बना देने के लिए, वह अपनी सारी शक्ति समेट कर जूझ रही है और उसका यह 'आज' अभी कम से कम आज तो सचमुच ही बड़ा शानदार प्रतीत हो रहा है। उत्तरीय और बुर्कों के बन्द टूट चुके हैं, विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में उसका प्रवेश है, शासन पर उसका अनुशासन है, राजनीति उसकी चालों से अस्त-व्यस्त और त्रस्त है, जीवन के हर क्षेत्र में उसकी भयंकर गति है। इस जगमग आज के तीव्र चुंधियाते प्रकाश में, मानस के शाश्वत मूल्यों के मोतियों की शीतल सुखद और ठहरी हुई आभा उसकी दृष्टि में समा सके यह तो संभव नहीं दिखता परन्तु एक दिन ऐसा आयेगा जब हमारा मोह भंग हो जायगा, जब 'क्षण को जीने' वाला क्षणजीवी दर्शन मरेगा, ये जगमग मूल्य काले पड़ जायँगे और तब केवल बुद्धि का सम्बल लेकर जीवन के अरण्य में भटकने वाला मानव और सफलता को जीवन की चरितार्थता समझ बैठने वाली मानवीय— केवल भारत की नहीं समूचे विश्व की—मानस के तट पर बिखरे हुए अगणित अनर्घ्य जीवन मूल्यों के मोतियों के झिलमिल प्रकाश के अपना पथ तलाशेंगे। आज नहीं तो कल वह दिन आयेगा और जरूर आयेगा और मानव जाति के दुर्भाग्य से यदि वह दिन न आया तो यह मानवता पशुता के गहरे गर्त में विलीन हो

जायगी। सम्भवतः इसीलिए हम मानस की शतियाँ मनाकर उसे प्राणप्रण से जीवित रखने का प्रयास कर रहे हैं।

परन्तु जब हम विश्व के संदर्भ में बात करते हैं तो मानस ही क्यों? अन्य कोई धर्मग्रन्थ या साहित्य-ग्रन्थ क्यों नहीं? वस्तुतः मानव समाज और उसकी व्यवस्थाओं को व्यष्टि और समष्टि के कल्याणकारी मूल्यों को ध्यान में रखकर इस प्रकार की सरस और साहित्यिक सर्जना विश्व का कोई महाकवि अब तक नहीं कर सका है। साहित्य के सम्पूर्ण सर्वांग सौन्दर्य को अपने दामन में समेटे हुए है यह अनुपम कृति गीता के कर्मवाद की टीका है, स्वस्थतम जीवन-दर्शन का निरूपण है, शाश्वत मानव-धर्म के, उसको गति देने वाले मूल्यों के सरल सुबोध और रोचक व्याख्या है—साकार उदाहरणों द्वारा। कभी कल्पना की आँखों से देखती हूँ शंकर के तांडव में इस विकृत सृष्टि का लय हो चुका है और बूढ़े विधाता के आवाहन पर विश्व के सारे साहित्यकार और दार्शनिक नयी सृष्टि का नये समाज का नक्शा लेकर जुटे हुए हैं। परन्तु अभी तक कार्यवाही नहीं प्रारम्भ हो सकी है। विधाता की अनुभवी आँखें जिसे तलाश रही हैं वह वहाँ नहीं है···और तब चन्द क्षणों में ही वह अन्यतम शिल्पी रामनामी उत्तरीय ओढ़े, मानस की पोथी अपने बगल में दबाये खटनहीं खटकाता हुआ अपनी गुरु गम्भीर चाल से उस सभा में पहुँचता है। विधाता आनन्दातिरेक से उछल कर खड़े हो जाते हैं और उसे गले से लगाकर कहते हैं "आओ कवि, नूतन सृष्टि के लिए मुझे तुम्हारे ही नक्शे की आवश्यकता थी'... और तब...लेकिन हम देखते हैं बात कहीं भटक गयी है और भटकती चली जा रही है। इस छोटे से लेख की परिधि में विचारणीय विषय है केवल मानस की मानुषी और यह कि आज की प्रगतिशील नारी उसके क्या कुछ ले सकती है।

प्रकृति में जो कुछ सुन्दरतम और उदात्ततम है, कोमलतम और दृढ़तम है उसकी प्रतिकृति है नारी, उसका प्रतीक है नारी या यों कहिये कि सौंदर्य और उदात्तता, कोमलता और दृढ़ता का चरम उत्कर्ष ही पूर्ण नारीत्व की परिभाषा है और यह पूर्ण नारीत्व मानसकार की प्रिय नारी मूर्तियों की अपनी विशेषता है। वह पुरुष के एकान्त क्षणों को अपने परस से सरस बनाने वाली उर्वशी भी है और जीवन की अरण्य यात्रा में कण्टकाकीर्ण पथ पर उसका अनुगमन करने वाली, उसे शक्ति देने वाली, उसका पथ आलोकित करने वाली सहचरी सावित्री भी है। जीवन के वसन्त में उसके वक्ष का

आश्रय लेकर उसके शरीर से लिपटकर मधुवाही मलय के झोकों से लहराने वाली लता भी है और तूफानी दिनों में सशक्त ओक की तरह दृढ़ता से खड़ी रहकर उसे आश्रय देने वाली, विपत्तियों से मूक युद्ध करने वाली पराशक्ति भी है। वह क्षत्रधारी राजा की भोग्या भी है और अकिंचन बनवासी के साथ वल्कल चीर धारण कर तप के लिए तत्पर योगिनी भी। कंकण, किंकिण और नुपुरों की ध्वनि की झंकार के मिस मदन दुन्दुभी वजाकर मर्यादा पुरुषोत्तम के मानस में विकार उत्पन्न करने वाली उस काम्य पुरुष की पौरुषेय माधुरी को अपलक नेत्रों से पीने वाली उसकी प्राप्ति के लिए साधारण नारी की तरह विकल हो जाने वाली, छविगृह में दीपशिखा सी दीप्त वह नारी अभिषेक का आयोजन व्यर्थ हो जाने पर किस तरह संक्षिप्त रूप से अपने को अभिव्यक्त कर मनीषी पति के सारे तर्कों को सुला देती है, यह द्रष्टव्य है—

"मैं सुकुमारी नाथ वन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कहं भोगू॥

ऐसेहूं वचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान।
तो अति दुसह वियोग दुःख सहिहहि पामर प्रान॥"

यह सच्चे जीवन सहचर या मीत के उद्गार हैं। इसमें केवल भावों की तरलता ही नहीं निरुत्तर कर देने वाली हाजिर जवाबी है, बौद्धिकता है। निश्चय ही सुन्दरता को सुन्दर करने वाला छवि गृह में दीप शिखा-सा उद्दीप्त वह निरुपम सौंदर्य केवल शरीरी सौंदर्य नहीं था जिसे आज की नारी अपना चरम गौरव मान बैठी है, वह उस अनुपमा की बुद्धि आत्मा और शरीर की यौगिक छवि थी। केवल मांस का लोथड़ा उद्दीप्त नहीं हो सकता। अस्तु।

पति की सारी शंकाओं का समाधान कर, उसके तर्कों को अपनी भावना के तीखे शर से काटकर सास को अपनी व्यथा समझाकर क्षण मात्र में पलग छोड़कर गोद और हिंडोरे में सोने वाली, अवनि की कठोरता से अपरिचित, चित्रलिखित कपि को देखकर डरने वाली वह विलासिनी और भीरु नारी वल्कल वसना योगिनी वन कानन के कष्टों को सहने की दृढ़ता समेटे पति के पीछे प्रसन्नमुख खड़ी हो जाती है।

परन्तु यह उसकी पूरी परीक्षा नहीं हुयी। अभी तो उसका मार्ग सुमनमय ही है। उसका आराध्य आगे-आगे चलकर उसके मार्ग को निरापद बना रहा है वह उसके चरण चिन्हों पर अपने कोमल चरणों को रखती हुई चली जा रही है। अभी उसका 'लतात्व' नष्ट नहीं हुआ है, अभी उसके ओकत्व

के दर्शन नहीं हुए हैं। अभी और कठिन परीक्षा बाकी है। उसका परिचय हमें हरण के प्रसंग पर रावण की अशोक वाटिका में मिलता है। उस दुष्ट के हाथों में पड़कर भी नारी सुलभ तेज मरता नहीं, उसका गाढ़ा धीरज छूटता नहीं, वह कहीं दीन नहीं होती, वह उसे 'छुद्र-शश' अज्ञान आदि की संज्ञा देकर फटकारती है। पति के आश्रय से दूर, राक्षसियों से घिरी हुई उस अश्रुमुखी मलिन वसना नारी को भय, लोभ और प्रीति दिखाकर रावण वश में करने का प्रयास करता है। परन्तु वह अयोध्या के अन्तःपुर में "दियन-मूरी सम" जो गायी जाने वाली कोमलांगी राजवधू पुरुष के आश्रय से परे इतनी सशक्त हो गयी है कि 'अहसास' की तीखी और कठोर धार उसे रंच-मात्र भी भयभीत नहीं कर पाती। वह उस नय-विशारद अनयी की भर्त्सना करती हुई कहती है—

"स्याम-सरोज राम सम सुन्दर। प्रभुभुज करिं कर सम दसकन्धर।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।।"

किन्तु इन तमाम परीक्षाओं और अग्नि-परीक्षाओं को झेलती हुई भी उसकी स्त्री सुलभ कोमलता, भावों की तरलता और उदात्तता कहीं मरी नहीं। मानसी नारी की यह अपनी विशेषता है।

मानस सरोवर की शोभा इस सनातन नारी की चर्चा करते समय एक और मूर्ति मेरे मानस पटल पर उभर रही है और बार-बार दृश्य सामने आ रहा है उसके प्राण प्रिय एक मात्र पुत्र राम के बनवास का। सुतैषणा के विकल होकर अनेक स्त्रियों में विभक्त उस पराये से पति के अभाव को पुरुष के हरजायी प्यार की व्यथा को वह इसी पुत्र का मुख देखकर भूली हुई थी पतोहू को देखकर उसका चिरतृषित प्राण तृप्त हो गया था। वह उसके मनोरथ के फूलने का समय था। पर तभी अभिषेक का सारा आयोजन सौत के कुचक्र से व्यर्थ हो गया, कल जो राजा होने वाला था वह वनवासी के वेश में उसके समक्ष आ खड़ा हुआ और उसका स्त्रैण पति अपने ही बनाये हुए जाल में फँसा हुआ था। कुछ क्षण उसकी प्रतिक्रिया में धैर्य, शालीनता और उदात्तता मूर्तिमान हो गयी है। न सौत पर कोई आक्रोश है, न पति से कोई शिकवा-शिकायत। पावस-पानी पड़े जवास की तरह सहमी सूख वह पट्ट-महिषी धैर्य धारण कर जो कुछ कहती है उसे सुनकर पाठक मण्डली श्रद्धा से अभिभूत हो जाती है। वह कहती है—

'तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका। पितु आयसु धरम कटीका ।।'

राजदेन कहि दीन वन मोहि न दुःख लव लेश,

तुम बिन भरतहिं भूपतिहिं प्रजहिं प्रचंड कलेश।

जौं केवल पितु आयसु ताता। तो जनि जाहू जानि बड़ि माता।

जौं पितु मातु कहेउ वन जाना। तो कानन शत अवध समाना ।।,

और फिर सुमित्रा, जिसके पुत्र को वनवास नहीं हुआ है, धैर्य धारण कर बड़े शान्त भाव से कहती हैं—

जौ पै सीय राम वन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ।।

यहाँ नारी की सारी भावना, उसका कोमल मातृत्व उसके जीवन की चरम साध धर्म और कर्त्तव्य की वेदी पर निछावर हो गयी। अपने हृदय का रक्त इस कर्त्तव्य के आवाहन पर इतने शान्त और सुस्थिर भाव से नारी और केवल नारी ही निचोड़ सकती है और निचोड़ कर भी अविचल दृढ़ता के साथ अटूट खड़ी रह सकती है। दशरथ का मरण इस तथ्य का प्रमाण है।

अभी त्रेता युग के नारी का चित्र पूरा नहीं हुआ है पर पृष्ठ भरते चले जा रहे हैं, सीमा निर्धारित है इसलिए जरा इसी परिप्रेक्ष्य में आधुनिक नारी को भी आंक लें। सौंदर्य और उदात्तता। कोमलता और दृढ़ता, त्याग और तप की क्षमता, ईमानदारी और निष्ठा आज की नारी में भी मानस की नारी से किसी तरह कम नहीं है। उसमें वे सभी श्रेष्ठतम मानवीय गुण हैं जिनकी अवदात्त आभा से मानस की नारी जगमगा रही है, जिनसे अलंकृत होकर वह युग-धर्म की प्रवाहिका बन गयी है, शाश्वत मूल्यों का प्रतीक बन गई है। परन्तु यहाँ उन गुणों का कुआर्डिनेशन कहीं मिसिंग हैं। वहीं वह मात्र शरीरी सौंदर्य को ही नारी जीवन की चरम उपलब्धि और चरम गौरव मान क्लबों में उसकी नुमायश लगा रही है, शरीर भोग को ही जीवन की मात्र सार्थकता समझ फ्रीसेक्स की चर्चा में और परिचर्चाओं में उलझी हुई है तो कहीं भावना की सारी तरलता को अपनी अतिशय बौद्धिकता से सुखाकर, कौमार्य को ही चरम लक्ष्य मान पितृ ऋण को अदा करने से भी कतरा रही है। कहीं कार्यालय के पत्थरों पर रोजी और रोटी के संघर्षों से जूझकर उसकी कोमलता इस सीमा तक नष्ट हो गई है कि उसका नारीत्व ही खो गया है, वहीं वह इतनी कोमल हो गई है कि पुरुष के आश्रय के बिना सीधी खड़ी ही नहीं हो सकती। कहीं उसकी ममता की परिधि इतनी संकीर्ण हो गई है कि अंग्रेजों

द्वारा परिभाषित परिवार के बाहर स्नेह की एक बूंद भी देना उसके लिए दुश्वार है तो कहीं उसकी ममता इतनी बिखरी हुई है कि किसी एक को भी आत्मीयता के सूत्र में बाँध लेने में वह असमर्थ हो गई है। संक्षेप में वह अतिवादिनी हो गई है, उसका संतुलन खो गया है। यह संतुलन उसे मानस की नारी से सीखना है। दूसरी विशेषता जो मानस के नारी की है वह यह कि वह बड़े सहज भाव से परिस्थितियों को अपने में समाहित कर, उस पर अपनी छाप छोड़ती हुई जीवित, बिना टूटे और बिखरे निकल जाती है और आज की नारी परिस्थितियों में डूब जाती है, खो जाती है, और उसकी विषमता की शत-शत छाप उसे मृत बना देती हैं, बदरंग कर देती है, सर्वथा बदल देती है। उदाहरणार्थ यदि वह राजनीति में गई तो बजाय इसके कि वह अपनी कोमलता और उदारता की छाप राजनीति पर छोड़े और उसकी प्राणलेवा चालों से कराहती मानवता को मुक्ति दे, वह स्वतः उसके गर्त में खोकर अपनी सहज शालीनता और उदारता को भूल उद्धत और छोटी हो जाती है और फिर लोगों के आतंक का, देश के विनाश का कारण बनती है। विश्व का इतिहास इस बात का प्रमाण है। अतः परिस्थितियों से स्व को बनाये रख कर शालीनता दृढ़ता और धैर्य से जूझने की कला हमें मानस की नारी से सीखनी होगी।

आज की नारी प्रकृति प्रदत्त श्रेष्ठतम गुणों का समन्वय क्यों नहीं कर पा रही है, और यह कि वह परिस्थितियों से जूझने की वह कला क्यों नहीं सीख पा रही है। इसका कारण, इसमें कितना हाथ पुरुष का, कितना इस समाज का और कितना खुद उसका है इसकी चर्चा कभी और अलग से की जायगी। यहाँ तो समाप्ति पर इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि अभी कम से कम इस देश की नारी में सीता मरी नहीं है और आज का पुरुष भोग की अदम्य लिप्सा से पागल होकर यदि उसे उर्वशी नहीं बना देना चाहता है तो वह स्वतः बदले, राम के आदर्शों तक पहुंचने का प्रयास करे और समाज यदि उस सनातन सीता को खो नहीं देना चाहता तो उन मैगजीन्स पर जो 'फ्रीसेक्स' की चर्चाओं और परिचर्चाओं से उसे सद्भ्रांत बना रहे हैं, भटका रहे हैं, उन साहित्यकारों पर जो पशुता के मूल्यों का अपने सड़े साहित्य के माध्यम से प्रतिष्ठा और प्रचार कर रहे हैं रोक लगाये, उनकी भर्त्सना करे। अभी मानस की सीता और देशों के लिए चाहे अप्राप्य आदर्श हो, हमारे देश का यथार्थ बन सकती है।

———

तुलसी का कलियुग वर्णन : वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में

—डॉ० होरिल

तुलसी को अनेक आलोचक वर्तमान की पृष्ठभूमि पर खींच ले आते हैं और वे उन्हें वर्तमान जीवन मूल्यों के विभिन्न सन्दर्भों से जोड़कर आधुनिक पीड़ित मानवता का उद्धारक घोषित करते हैं। चाहे जो भी हो, पर एक तथ्य यह भी मान्य है कि कवि अपने जीवन के परिवेश और वातावरण से प्रभावित होता है और वह उससे नितान्त विलग होकर साहित्य की सर्जना नहीं कर सकता। तुलसी के विषय में भी यही बातें मान्य हैं। कोई कवि, भूत का, अपने काव्य में अध्ययन, चिन्तन और सबल प्रतिभा के माध्यम से सशक्त रूप में चित्रण प्रस्तुत कर सकता है किन्तु भविष्य के स्वरूप का चित्रण दूरदर्शिता के आधार पर कितने भी मार्मिक रूप में उद्‌घाटित करने का प्रयत्न क्यों न करें तथापि वह अपने वर्तमान के परिवेश से विलग नहीं हो पाता है। तुलसी के कलियुग वर्णन के सन्दर्भ में कुछ बातें देखें।

'उत्तरकाण्ड' में काक भुशुण्डि और गरुड़ संवाद के अन्तर्गत तुलसी ने कलियुग का चित्रण किया है। यह चित्रण आलोचकों के मत से उनकी भावी दृष्टि का संकेतक है। कुछ चित्रणों में कवि की सूक्ष्म एवं पैनी प्रतिभा के कारण युग का यथार्थ उद्‌घाटित हो गया है—जिसे भावी भावनाओं और विचारों से जोड़ देने पर असंगति की प्रतीति नहीं होती है। तो क्या यह सत्य है कि ऐसे प्रकरणों में तुलसी युग की संस्कृति, परिवेश और जीवन-मूल्यों से अलग हो गए हैं—नहीं, कदापि नहीं। कलि-वर्णन के प्रसंग में तुलसी ने चतुर्वर्ण, आश्रम, ब्राह्मण, राजा, श्रुति, पण्डित, संत, आचारवान्, असत्य-भाषी, विदूषक, गुणी, आचरणहीन, ज्ञानी, विरागी, तपस्वी, अशुभ-वेश-धारी, सिद्ध, पूज्य, स्त्रैण, शूद्र, कामी, लोभी, क्रोधी, नारी, गुरु, शिष्य, माता-पिता-बालक, विप्र, परस्त्रीगामी, अद्वैतवादी, धर्म-ग्रन्थ-विरोधी, तेली, कुम्हार, श्वपच, किरात, कोल, कलवार, संन्यासी, वर्णशंकर, कुल-कामिनी, दासी, नारी-मोह, दिगम्बर (नंग-धड़ंग-साधु), धर्म-ग्रन्थ-विरोधी, कपट, हठ, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह, काम, जाति, कुजाति, भिक्षुक, पर-

निन्दक आदि पर अपनी लेखनी चलाई है। तुलसी ने कलियुग उसे माना है जिसमें अन्याय-अत्याचार, क्षुद्रता और पाप के अतिरिक्त कुछ बचता ही नहीं है। यदि यह सत्य है तो आज का समाज इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता है। तो क्या कलियुग का 'प्रथमचरण' कहकर झुठला दें? कदाचित् यह कोई सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं है। नारी और शूद्र को तो तुलसी ने पतित माना ही है फिर यदि कलियुग-वर्णन में उन्होंने इस बात की पुनरावृत्ति कर दी तो कोई नई बात नहीं हुई। उनके मन-मस्तिष्क में जो भावना वर्तमान थी और जीवन के सामाजिक परिवेशों में जिसे उन्होंने परखा था तत्कालीन भावना के उसी रूप का पुनरुंद्घाटन शूद्र और नारी का चित्रण है। हम जिसे आज धर्म कहते हैं, कल अधर्म हो सकता है। यदि नारी को उस समय स्वतंत्रता नहीं प्राप्त थी तो इसका आशय यह नहीं है कि आज भी उसे स्वतंत्रता न प्रदान की जाय तो यह सर्वोत्तम धर्म होगा। यह धर्म नहीं, वरन् अधर्म का गोरख-धन्धा ही कहा जाएगा।

सच तो यह है कि तुलसी का यह वर्णन वस्तुस्थिति की अपेक्षा भावात्मक तथ्य पर अधिक आधारित है, वे 'भ्रष्ट समाज' के उस स्वरूप का प्रकाशन करते हैं जिसकी अन्तिम परिणति विनाश ही हो सकती है। जब सभी प्रकार के पाप ही कलियुग की विशेषता हैं तो समस्त वर्णित प्रसंग या पात्र का विनाश अनिवार्य है। इन समस्त पापों से कोई उद्धार चाहता है तो राम की उपासना करे। मैं समझता हूँ यह घोर पापियों के अन्याय प्रवृत्ति के प्रोत्साहन का मार्ग ही प्रशस्त करेगा।

मेरा अनुरोध उन सज्जनों से है जो तुलसी के इस प्रसंग के माध्यम से समाज में द्वेष और ईर्ष्या के बीज का वपन करते हैं और वे आये दिन तत्सम्बन्धी वर्णनों के माध्यम से आत्मघृणा का प्रकाशन करते हैं। इसमें तुलसी का कोई अपना दोष नहीं है। जो लोग मानवता के प्रचारक और पोषक हैं, वे 'मानस' के अन्य स्थलों को भी देखें, जहाँ तुलसी परोपकार और मानवता को स्वार्थ की निम्नभूमि से उठाकर उच्चस्तरीय भावना के रूप में व्यक्त करते हैं। कवि युग से प्रभावित होता है उसके भावी संकेत से सम्पन्न भावमय चित्रणों में भी युग की अनुगूंज समाविष्ट रहती है, इसलिए वह भावी स्वप्न का चितेरा हो सकता है पर चित्र सर्वांग पूर्ण ही हो यह अनिवार्य नहीं है।

●

वैर-भाव की भक्ति और आधुनिक मनोविश्लेषण

— डॉ युगेश्वर

गोस्वामी तुलसीदास ने राम के चरित को उदात्तता की उस भूमि पर रखा है जिसके आगे राह नहीं है। दुश्मन भी उनके प्रति वैर-भाव की भक्ति रखता है वे अन्यायियों और पापियों को भी मुक्ति देते हैं। उनका चित्त करुणा का आकर है।[1] वे अत्यन्त कृपालु हैं ये स्थितियाँ जहाँ एक ओर राम की महानता प्रगट करती है वहीं दूसरी ओर रावण की श्रेष्ठता भी बताती है। राम अगर करुणा के अवतार हैं तो रावण भी मूलतः भक्त है किन्तु रावण का एक भी ऐसा आचरण नहीं होता जिसे भक्ति की संज्ञा दी जाय। भक्ति केवल अमूर्त धारणा न होकर जीवन पद्धति और सामाजिक मूल्य भी रही है। यह जीवन पद्धति और सामाजिक मूल्य हिन्दू संस्कारों में देखे जा सकते हैं। इस दृष्टि से रावण के समस्त कार्य विपरीत हैं। राम का जन्म जिन मूल्यों और मर्यादाओं की रक्षा करने के लिए हुआ है उनका वह घोर विरोधी है। यों कहिए कि राम का जन्म ही रावणत्व के नाश के लिए हुआ है, यह न होता तो वे अवतार माने ही न जाते। तब क्या राम का जन्म अपने भक्त का नाश के लिए हुआ है? फिर प्रश्न यह भी हो सकता है कि रावण अन्यायी पहले था या भक्त पहले? पहले भक्त होने की बात ठीक नहीं, क्योंकि कोई भी भक्त अन्यायी कैसे हो सकता है? हाँ, अन्यायी किसी प्रकार भक्त हो सकता है। तब उसमें अन्यायी स्वभाव का अभाव होना चाहिए। किन्तु ऐसी बात भी नहीं कि राम भक्त होने पर रावण ने अपने अन्यायी आचरण को छोड़ दिया है। अनाचार और भक्ति एकत्र हैं। पापियों का उद्धार भक्ति आन्दोलन में कोई नवीनता नहीं रखता। किन्तु उसी भक्त का उद्धार होता है जिसे अपने किए पर अफसोस हो। जो अपने बुरे कार्यों

---

१. खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी।।
उमा राम मृदु चित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहिं निसिचर।।
देहिं परम गति सो जिअ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी।।

से हटे। यह ऐसा सिद्धान्त है जो पापी को बुरे कार्यों से अलग रहने की प्रेरणा देता है। इसमें मुकावले बुरा कार्य करते हुए मुक्ति की कामना और प्राप्त करना विचारणीय है।

रावण की दृष्टि में भक्ति की सामान्य पद्धतियों का पालन वह इसलिए नहीं करता है कि 'तामस देह से भक्ति' नहीं हो सकती है। यहाँ कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। क्या शरीर स्वयं में तामस है? अगर वह सच हो तो क्या उसे साधनाओं द्वारा सात्विक नहीं वनाया जा सकता? ऐसा जान पड़ता है कि तुलसीदास एक ओर रावण को गौतम और पुलस्त्य कुल का मानते हैं, दूसरी ओर राक्षस भी कहना चाहते हैं। वर्णव्यवस्था तथा बहुत कुछ आधुनिक मान्यताओं के अनुसार भी सामाजिक, पारिवारिक और वंश परम्परा के कारण मनुष्य के शरीर और मन का खास ढंग भी बन जाता है। इस आधार पर रावण का 'तामस देह' वाला कथन महत्त्वपूर्ण है।

असामान्य मनोविज्ञान इन बातों की तह में गए बिना इन बात की जाँच करना चाहेगा कि रावण में वैर और भक्ति दोनों साथ हैं। अपनी प्रामाणिकता की पुष्टि के लिए वह दो विरोधी का संयोग ढूंढ़ेगा। किन्तु दोनों में तत्वतः भेद है। असामान्य मनोविज्ञान में इन दो विरोधी तत्त्वों का ज्ञान चित्त विश्लेषण के द्वारा होता है। जव एक ही व्यक्ति या वस्तु के प्रति किसी के मन में प्रेम और घृणा दोनों हो तो एक चैतन्य रहता है तो दूसरा अंतस्संज्ञा में कभी-कभी जव किसी व्यक्ति के प्रति भयानक क्रोध के वाद प्रेम हो जाय तो उस अवस्था में दोनों चेतनाएँ स्पष्ट होती हैं। कभी-कभी अचेतावस्था या स्वप्नावस्था में ये स्थितियाँ प्रगट होती है। इन दो विरोधी स्थितियों को धारण करने वाला मनुष्य इन स्थितियों से प्रायः अनभिज्ञ रहता है। इसमें व्यवहारों से ही विरोधी स्थितियों का अनुमान लगाया जा सकता है। किन्तु रावण के साथ ऐसी बात नहीं है। असामान्य मनःस्थिति का व्यक्ति प्रायः स्वयं चित्तविश्लेषण में असमर्थ रहता है। इसकी अपेक्षा रावण अपने चित्त का विश्लेषण न कर राम के प्रति अपने वैर का कराण 'तामस देह' को बताता है। चूँकि 'तामस देह' से भक्ति नहीं हो सकती इसीलिए उसे वैर-भाव का सहारा लेना पड़ा। मतलब यह कि वैर करना उसकी नियोजित और निश्चित योजना के अन्तर्गत है। यह सब चेतन मन के द्वारा होता है। भक्ति और वैर दोनों ही रावण के चेतन मन में हैं। अवचेतन या अंतस्संज्ञा के लिए उसमें गुंजाइश नहीं है।

भारतीय मनोविज्ञान में भी काम क्रोध का विकास माना गया है। अतिकाम क्रोध बन जाता है। कभी-कभी विफल काम भी क्रोध में देखा गया है किन्तु रावण के साथ ऐसी स्थितियाँ नहीं हैं। असामान्य व्यक्ति के चेतन मन में जहाँ दो में से एक समय एक ही की उपस्थिति आवश्यक है। फिर भारतीय मनोविज्ञान में काम और क्रोध सम्बन्धी यह विश्लेषण कुछ आवेगात्मक स्थिति का जान पड़ता है जो प्रायः अस्थायी भी होता है। इसकी अपेक्षा रावण में क्रोध मुख्य न होकर वह भक्ति प्रदर्शन का ढंग मात्र है।

वैर-भाव भी भक्ति और भक्त रावण का यह चरित्र हमारे सामने नैतिक और मूल्यगत प्रश्न उपस्थित करते हैं। यदि अपवित्र और अन्यायी आचरण करते हुए भी कोई भक्त बन सकता है तो सदाचारी या साधुभक्त होने की आवश्यकता ? कुछ व्यक्तियों की दृष्टि में रावण को मिलने वाली मुक्ति द्वितीय कोटि की है। वह मुक्ति नहीं है जो शरणागत और अनन्यसेवी साधुभक्त को मिलती है किन्तु लाखों ऋषियों के हत्यारे और अनेक मानवी मूल्यों को तोड़नेवाले को मिलनेवाली यह मुक्ति भी उचित है क्या ? सामाजिक न्याय की दृष्टि से इसे कभी उचित नहीं कहा जा सकता है। कुछ ऐसी ही स्थिति वालि की है वह वालि जो अनुजवधू, भगिनी, सुत नारी आदि की मर्यादाएँ भी नहीं जानता। राम उसे भी मुक्ति देते हैं। कभी भगवानशंकर ने भस्मासुर को वर देकर अपनी ही मौत को निमन्त्रित किया था किन्तु राम ने तो इन्हें मुक्ति देकर समाज में महत्त्वपूर्ण भ्रम उपस्थित कर दिया है।

वैर-प्रेम सम्बन्धी तुलसीदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ विचारणीय हैं। मानों ये पंक्तियाँ राम-रावण सम्बन्धों को समझने की कुञ्जी हो—

तुलसी वैर-सनेह दोउ रहित विलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिं निंदहिं सुर सरिवारि।
अमिय गरि गारेउ गरल गारि कीन्ह करतार।
वैर-प्रेम की जननि जुग जानहिं बुध न गँवार॥

रामकथा का प्रयोजन—आज के परिप्रेक्ष्य में

—श्रीकान्त शर्मा

आज रामकथा को तीन दृष्टियों से देखा जाता है। प्रथम वे जिनकी दृष्टि पौराणिक है, जो राम को अवतार मानते हैं। राम के भक्त हैं। ऐसे व्यक्ति राम और रामकथा की आलोचना-प्रत्यालोचना करना और सुनना भी पाप समझते हैं ?

दूसरे वे हैं जो तथाकथित प्रगतिवादी हैं। रामकथा को अनैतिहासिक मानते हैं। इनके अनुसार यह बीते युग का अंधविश्वास है, जो 'आउट आफ डेट' हो गया है।

तीसरी दृष्टि उनकी है जो 'रामकथा को भारतीय संस्कृति की रीढ़' मानते हैं। इनके लिए रामकथा भले ही अनैतिहासिक, काल्पनिक हों—पर उसके पात्र राम, सीता, कैकेयी, वशिष्ठ, रावण आदि बुद्ध, अशोक, हर्ष और अकबर से अधिक जीवन्त हैं। ये राम-सीता को अलौकिक नहीं वरन् ऐसा मानव मानते हैं जिनमें अनेक गुण हैं पर त्रुटियाँ भी हो सकती हैं।

सामान्य जनता में पुरातन विचारधारा का बड़ा प्रभाव है। कथावाचक जनता की भाव-भूमि पर कीर्तन-भजन और वाद्य के सहारे राम की कथा को अपनी जीविका का साधन बनाते हैं। भगवान के स्तर पर राम सीता के आदर्श प्रस्तुत किये जाते हैं जो सामान्य जन की पहुँच के सदैव बाहर रहते हैं और इस प्रकार आदर्श एवं यथार्थ के बीच स्वाभाविक दूरी एक द्वन्द्व (Conflict) बना रहता है।

रामलीला में भावनाओं को उभार कर भोली जनता विशेषकर नारी समाज को रामविवाह की लीला में सीता के कन्यादान का पुण्य-फल प्राप्त करने का लालच देकर धन कमाया जाता है और साथ ही घहराती जाती है अन्धविश्वास की परतें।

पर सामान्य जन में एक और भी रामकथा चलती है वह है लोक गीतों की रामकथा। इन गीतों में राम और सीता भगवान नहीं वरन् नर और नारी के प्रतीक हैं। 'सास के लिये कौशल्या, ससुर के लिए दशरथ, देवर के

लिए लक्ष्मण...नगर के लिए अयोध्या तो निश्चित ही है'। इन प्रतीकों के माध्यम से मानव जीवन के सूक्ष्मतम एवं रामकथा के प्रेरक भाव दोनों ही पलते रहे हैं। कहते हैं अहीर को अपनी ससुराल से बड़ा प्रेम होता है। वह चोरी से अपने घर की वस्तुयें ससुराल भेजा करता है। एक अहीर गीत में इस भाव की अभिव्यंजना देखिए—

राम की बगिया सीता की फुलवारी,
लछिमन देवरा बइठ रखवारी।
तोरि तोरि नेवुआ पठावे ससुरारी,
जहि नेवुआ की बनै तरकारी॥

राम वन गमन* के समय, नारी का पति के सान्निध्य की उत्सुकता एवं त्याग का सहज भाव देखिए—

रथ ठाढ़ करहु हमहूँ चलवै।
हुआँ कहाँ पउब सीता मेवा-मिठइया॥ १॥
रथ ठाढ़ करा वन-फल खावै।
हुआँ कहाँ पउबू सीता सरजू का पानी॥ २॥
रथ ठाढ़ करा हम प्यासन मरवै।
हुआँ कहाँ पउबू सीता सेज सुपेती॥ ३॥
रथ ठाढ़ कर भुइँया सोइब।
जावै राम के साथै रहुब न कौनिउ जतन से॥ ४॥

एक लम्बे लोकगीत में लवकुश का जन्म होने पर लोक-जीवन की सीता अयोध्या दशरथ (ससुर) कौशल्या, लक्ष्मण को रोचना भेजती हैं पर नाऊ को मना कर देती हैं कि राम को रोचना मत देना।

"पहिले दिह्यो राजा दशरथ दूसरे कौशल्या रानी, दूसरे कौशल्या रानी हो।
हे इ हो तिसरे दिह्यो लछिमन देवरा पै पियहि न बतलाव हो।"

राम जब रोचना लक्ष्मण के माथे पर देखते हैं तो पूछते हैं—

हेइ हो, महर महर करइ माथ रोचन कहाँ पायउ हो।
भइया केकरे काये नंदलाल तौ जियरा जुडावन हो॥

लक्ष्मण उत्तर देते हैं—

भौजी तो हमरे सिताल रानी वसहि विन्द्रावन, बसहि बिन्द्रावन हो।
भइया उनके भये हैं नन्दलाला, रोचन सिर धारन हो॥

---

* लोक जीवन की सीता—डॉ रामशरण सिंह।

यह सुनकर राम की आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है, कहते हैं :

अरे रे लछिमन भइया ! विपतिया के साथी, विपतिया के साथी हो।
भइया एक बेर जातेउ मधुबन का, सितइ लइ अउतेउ हो ।।

अश्वमेध यज्ञ की पूर्ति के लिए जब सीता की आवश्यकता पड़ती है तो लक्ष्मण सीता को बुलाने जाते हैं, न आने पर गुरु वशिष्ठ जाते हैं तो सीता उनका आदर करती हैं पर कहती हैं :—

सबकै हालि गुरु जानौ, अजानि बनि पूछौं, अजान बनि पूछौं हो।
गुरु अस कै राम मोहिं डोहनि तो कैसे चित्त मिलिहैं हो।
गुरु अब न अयोध्या का जाइब.......................... ।।

आज आटे-दाल के चढ़ते भावों के बीच रामराज्य की कल्पना कितनी आकर्षक है, पर यह लोकतंत्र का युग है, विचारों की स्वतंत्रता का समानता का युग। राम का राज्य होगा तो नारी अकारण ही निर्वासित होगी। शंबूक (शूद्र-वर्किंग क्लास) पीड़ित होगा। डॉ० व्यास के शब्दों में "न्याय और अवसर की समानता इनको (शूद्रों को) बिल्कुल नहीं प्राप्त थी। जन्मना सामाजिक व्यवस्था में यह बहुजन वर्ग अत्यन्त ही निकृष्टतम अवस्था में रहता था।"† स्पष्ट ही राम के अत्यन्त न्यायप्रिय होने पर भी वर्णवादी व्यवस्था कितनी घातक सिद्ध हो सकती थी। जो राम रामराज्य में वर्णवाद के चक्कर में फँसकर तपस्वी शंबूक का वध करते हैं वही राम वन में वनवासियों (सामान्य जन) के बीच गुह निषाद को भाई भरत के समान गले लगाते हैं। शूद्रा शबरी के झूठे बेर खाते हैं। जटायू पक्षी का पिता के समान दाह-कर्म करते हैं। सीता एक अनजानी फेंकी हुई सन्तान, कितनी पावन कितनी पवित्र और साथ ही नारी-भावनाओं की कितनी सहज प्रतीक सिद्ध हुईं कि युगों तक एक कसौटी रहेगी। मानस की कथा में गौतम इन्द्र की भोगी अहल्या को शिला से नारी हो जाने पर (अर्थात् पश्चात्ताप के बाद) पुनः ग्रहण कर लेते हैं।

आज के परिप्रेक्ष्य में ये कुछ तथ्य है, जिन्हें परख कर अनेकों प्रसंगों से और भी निष्पक्ष निष्कर्ष निकाल कर उन्हें समझा, छोड़ा और लिया जा सकता है, जिससे हमारा आज का युग सार्थक हो सकता है, पर यह तभी सम्भव है जब हम जन-जन में बसी राम कथा में राम का मानवी रूप स्वीकार करें।

———

† डॉ० व्यास रा० का० स० पृ० ८२।

आधुनिक युग-बोध के परिवेश में तुलसी की सामाजिक चेतना

—डॉ० अर्जुन राम

युग बोध की मूल संवेदना उसकी सामाजिक चेतना होती है। जिस कवि में इस मूल संवेदना की पकड़ जितनी ही गहरी होती है, वह उतना ही दीर्घ-जीवी होता है। उसकी कृति समाज और समय विशेष की सम्पत्ति न होकर सार्वभौमिक जीवन-मूल्यों का माप-दण्ड बन जाती है। ऐसा ही साहित्य हृदय की गहराइयों में उतर कर स्मृतियों में अमर हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास का साहित्य इसी कोटि का है। स्वस्थ-सामाजिक संरचना उनके साहित्य का केन्द्र-बिन्दु है।

समाज की मुख्यतः तीन कड़ियाँ हैं—(१) व्यक्ति, (२) परिवार तथा (३) सामाजिक व्यवस्था। उपर्युक्त कड़ियों में प्रथम कड़ी—व्यक्ति, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। जिस प्रकार एक-एक बूंद के संघात से जलाशय की सृष्टि होती है, उसी प्रकार एक-एक व्यक्ति के मिलने से समाज की रचना होती है। जिस प्रकार जल की एक-एक बूंद के निर्मल होने पर जलाशय स्वतः निर्मल और बूंदों के मलयुक्त होने पर वह गन्दा हो जाता है, उसी प्रकार व्यष्टिगत इकाई के संस्कार से समाज संस्कृत और उसके विकृत हो जाने पर समाज विकृत हो जाता है। यही कारण है कि प्रायः सभी युगचेता महापुरुषों ने वैयक्तिक स्तर पर व्यक्ति के सुधार पर विशेष बल दिया है। तुलसी की सामाजिक चेतना भी इसी की पक्षधर है।

वैयक्तिक स्तर पर व्यक्ति के व्यक्तित्व की तीन विधायें हो जाती हैं—१–भाव (हृदय) पक्ष, २–बुद्धि (ज्ञान) पक्ष, ३–क्रिया (कर्म) पक्ष, ये तीनों पक्ष एक दूसरे से पूरक हैं। इनके समन्वय पर ही स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण होता है और ऐसा ही स्वस्थ व्यक्तित्व समाज की शेष कड़ियों का स्वस्थ समायोजन कर आदर्श सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करने में समर्थ

होता है। आन्तरिक साम्य के अभाव में बाह्य सामाजिक साम्य की प्रतिष्ठा सम्भव नहीं है। इसीलिये तुलसी ने आन्तरिक साम्य को प्राथमिकता देते हुये वैचारिक विरोधों के सामञ्जस्य पर विशेष बल दिया है। उनकी समन्वय-साधना और लोक धर्म की प्रतिष्ठा इसी तथ्य के परिचायक हैं। इसके लिये उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के उदात्त चरित्र की अवतारण की है। व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक तीनों ही बिन्दुओं पर वे एक आदर्श महामानव के रूप में प्रतिष्ठित हैं। व्यक्तिगत स्तर पर जहाँ वह सर्वगुण सम्पन्न अजेय युग पुरुष हैं, वहीं पारिवारिक जीवन में आदर्श पुत्र, भाई और पति भी हैं। सामाजिक जीवन में आदर्श प्रजापालक के रूप में—लोक-मर्यादा का निर्वाह करते हैं।

आधुनिक युगबोध का मूल स्वर है—सामाजिक विषमता को समाप्त कर उसके स्थान पर स्वस्थ समाजवादी व्यवस्था का निर्माण, जिसमें शक्ति, सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को प्रगति करने का समान अवसर प्राप्त हो। इस व्यवस्था की एक झाँकी देने के लिये गोस्वामी जी ने आदर्श 'राम-राज्य' का चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें आधुनिक समाजवादी व्यवस्था के बीज तत्त्व विद्यमान हैं, जो हमारी सांस्कृतिक परम्परा से अनुप्रमाणित हैं। निःस्पृहता, आस्तिकता, मानवीय संवेदना, व्यक्ति-व्यक्ति की समानता, सम्पत्ति का संतुलित विभाजन, परोपकार, उदारता, श्रम का महत्त्व तथा जनमत को प्राथमिकता आदि रामराज्य के आधारभूत तत्त्व हैं।

आदर्श सामाजिक व्यवस्था का संचालन वही व्यक्ति कर सकता है, जो स्वयं एक आदर्श हो? व्यक्तिगत स्तर पर निःस्पृह, निर्लिप्त और सत्ता की लोलुपता से ऊपर उठा हो। आदर्श रामराज्य के अधिष्ठाता भगवान् राम का व्यक्तित्व इसी कोटि का है। राज्य के प्रति उन्हें रंच मात्र भी मोह नहीं है। जिस समय राज्याभिषेक की बात चलती है, उदार चेता राम चिन्ताओं में डूब जाते हैं—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन, सयन, केलि, लरिकाई।
विमल बंस यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥

आज की सामाजिक व्यवस्था में श्रम का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस व्यवस्था में वही व्यक्ति सामाजिक सुविधाओं को प्राप्त करने का अधिकारी है, जो लोकसंग्रह की भावना से कार्य करे, दूसरों के श्रम पर पलने

वाला कामचोर न हो। 'रामराज्य' में श्रम की इस महत्ता पर भी विशेष बल था। राजरानी सीता को भी अपना और घर का काम स्वयं करना पड़ता था :—

निज कर गृह परिचरचा करई।
रामचन्द्र आयसु अनुसरई ॥

'जनमत' आज की सामाजिक व्यवस्था पर मूलाधार है। तुलसी के राजा रामचन्द्र भी इस व्यवस्था के प्रति समर्पित हैं, कहीं भी उन्होंने स्वेच्छाचार को प्रश्रय नहीं दिया है। दशरथ भी राम को राज्याभिषेक देने के पूर्व 'जनमत' की अनुमति माँगते हैं—

जौ पाँचहि मत लागै नीका।
करहु हरषि हिय रामहिं टीका ॥

सामाजिक चेतना का चूड़ान्त निदर्शन वहाँ मिलता है, जब प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक-दायित्व के प्रति जागरूक होकर अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार करता है। अपने नैतिक दायित्व के प्रति उदासीन नहीं रहता। रामचरित मानस में स्थल-स्थल पर इस चेतना के सजीव चित्र मिलते हैं। व्यक्ति ही नहीं, पशु-पक्षी तक अपने दायित्व के प्रति पूर्ण जागरूक हैं। जिस समय रावण सीता का अपहरण कर आकाश-मार्ग से जाने लगता है उस समय शक्ति और सामर्थ्य में रावण की तुलना में नगण्य जटायु अपना समूचा मनोबल समेट कर उसे ललकारता है—

रे ! रे ! दुष्ट ठाढ़ किन होही।
निर्भय चलेसि न जानहि मोही ॥

और अन्त में सत्य के लिये लड़ते-लड़ते आत्मोत्सर्ग कर देता है। पक्षीराज जटायु का एक-एक शब्द और उसका आत्मोत्सर्ग उन लोगों के लिये चुनौती है जो समर्थ होते हुए भी, स्वार्थ-लिप्सा के घरौंदे में घिर कर सामने होते हुए अन्याय को देख कर चुप रह जाते हैं; अन्याय के प्रति उनकी जवान तक नहीं हिलती।

इस प्रकार तुलसी की सामाजिक चेतना–कुछ अपवादों को छोड़कर, आज के भाव वोध के वहुत समीप है। भारतीय चिन्तन के परिवेश में उसका पुनर्मूल्याङ्कन हमारे समाज-निर्माण में विशेष सहायक हो सकता है।

———

गोस्वामी तुलसीदास का लोकनायकत्व

—डॉ० मधुकर भट्ट

आज लोकमत की उत्तरोत्तर बढ़ती महत्ता के साथ-साथ मान्य महापुरुषों के लोकनायकत्व का गुण-गौरव परिचर्चा का विषय बनता जा रहा है। वस्तुतः विश्व की महत्तम विभूतियाँ जीवन की कठोरतम घड़ियों में प्रादुर्भूत हुई हैं। औग्रसेनी कंस की कारा में लीला पुरुषोत्तम का जन्म और ईसा जैसे अनेक महापुरुषों की जीवनियाँ इसकी साक्षी हैं। युग के कटुतम अनुभव, जीवन की उग्रतम कठोरताएँ ही उनके जीवन की भूमिकाएँ बनी हैं। कौन नहीं जानता कि अभुक्त मूल में जन्म लेने वाले माता-पिता के सहज दुलार को खोकर अकिंचन मुनिया की गोदी में पला, यह महापुरुष नरहरिदास जैसे गुरु की कृपा पाकर राम बोला शिष्य, शेष सनातन से अशेष वैदिक ज्ञान परम्परा को पाकर ज्ञानी बना। प्रिया के प्रणयोन्मत प्रणयी के रूप में लोक लज्जा में डूबी रमणी के फटकार से उद्‌बोधित एवं सांसारिक मोह माया से विरक्त हो रामभगति की सुरसरि से 'लोकलाहु परलोक निबाहू' की लोक मंगल की कामना से 'कहेऊ कथा संसार हित' का उद्‌घोष किया।

यही कारण था कि उनका स्वान्तः सुखाय, 'बहुजन हिताय' के महनीय आदर्श को फलीभूति कर सका। इस लोक मंगल की कामना में उनका जीवन-जगत् का अनुभव प्रेरक रहा है। उनके विषद जीवनानुभव की सत्यता ही उन्हें लोक नायक के रूप में प्रतिष्ठित करती है। किसी महापुरुष का लोकनायकत्व उसके तत्कालीन जीवन की व्यापक अनुभूतियों एवं सुधारात्मक उन मौलिक आदर्शों की उपस्थापना पर आधारित होता है जो देश काल जाति की सीमा को अतिक्रमित कर चिरन्तन सत्य की सार्थकता पाते हैं।

अपनी इस कसौटी पर गोस्वामी जी की विचारधारा को प्रथमतः हम उनके व्यापक जीवन अनुभव की पर्यालोचना करते हुए यह पाते हैं कि अपने जीवन की अबोध घड़ियों में द्वारे-द्वारे भटकते हुए इस महापुरुष ने कितने

विष घूँट पिए होंगे। गोस्वामी का सम्पूर्ण साहित्य साक्षी है—कि उन्होंने गुरुवर नरहरिदास जी के चरणों में सेवारत गुरुभक्त शिष्य के रूप में भारत के कोने-कोने के तीर्थों का पर्यटन कर वहाँ के लोक जीवन की सच्ची अनुभूति की होगी।

जीवन जगत् की व्यापक अनुभूतियों के चित्रण से गोस्वामी जी का अमर काव्य भरा पड़ा है। चक्रवर्ती महाराज दशरथ का वैभवशाली परिवार अपनी सुख श्रीसमृद्धि से वर्णित है, जिसे देखकर इन्द्र की अमरावती भी तुच्छ-सी लगती है। मुनियों का शान्त आश्रम, शांति-संयम धर्माचरण का प्रतीक है, निषादराज की बस्ती एवं केवट परिवार सद्भाव एवं सेवा से पूरित है, ग्राम वधुओं के सौम्य, उदार और निश्छल स्वरूप स्वाभाविक है, भिलनी का आतिथ्य आज भी लोकोत्तर प्रमाणित हो चुका है। यही नहीं उन्होंने देव, मनुज और दानव के स्वरूप को बड़ी सत्यता से रूपायित किया है।

जहाँ एक ओर गोस्वामी जी ने रामराज्य के वर्णन में उच्चादर्शों का स्वरूप सँवारा है वहीं कलिकाल-वर्णन में तत्कालीन मर्यादा और विशृंखलित समाज का स्वाभाविकता से वर्णन किया है। लम्बे बालों और जटाधारी तापस गृहस्थों का दारिद्र्य और यतियों की सम्पदा, गाल बजाने वाले पण्डित, दूसरे के धन को अपहरण करने वाले चतुर, सौभाग्यवती स्त्रियों की दुर्दशा और विधवाओं के साज शृंगार, धन लोभी गुरु गुरु-अपमानरत शिष्य, उदरपूर्ति की साधिका विद्या, सभी निम्न जातियों का ज्ञानी बनने का ढोंग, ब्राह्मणों का कुत्सित आचरण वाला स्वरूप आज के लिए अधिक स्वाभाविक बन पड़ा है। पाप परायणता अपने चरमावस्था में वर्णित है कि पाप-पुण्य की सम्पूर्ण धार्मिक मान्यताएँ मिथ्या प्रलाप सी सिद्ध होती हैं। अवर्षण और अन्नाभाव की परिकल्पना आज के जनजीवन की विकट समस्या बनी हुई है। तुलसी के 'रामचरितमानस' में जहाँ एक ओर राम और सीता जैसे आदर्श चरित्र हैं वहीं रावण, सूर्पणखा, खर-दूषण आदि पतित पात्र भी हैं। मानस तो 'दोष रहित दूषन सहित' का प्रतीक है।

इस प्रकार यह सहज अनुमित की जा सकती है कि गोस्वामी जी ने कलिकाल वर्णन के व्याज से तत्कालीन समाज की विद्रूपता, विशृंखलता पाप परायणता को सहज स्वाभाविक रूप में मूर्तिमान किया है। इसके साथ ही साथ इस पापाचार, अनाचारके घोरतम स्वरूप की भी परिकल्पना की है

जो आज के लिये भी युग धर्म बना है। जीवन-जगत के हर वर्गों का जैसा स्वरूप मानस में रूपांतरित हो उठा है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

जीवनानुभव की विशदता की परिचर्चा के बाद लोक मंगल की भावना एवं आदर्शों की परिकल्पना की विवेचना उनके लोक-नायकत्व के महत्तम गुण-गौरव की परीक्षा का अपरिहार्य अंग है। गोस्वामीजी जैसे महापुरुष एक ओर मोह माया से विरक्त राम भगति परवश से निस्पृह दिखाई पड़ते हैं, दूसरी ओर परदुःख दुःखी दयाल की भावना से उनका मानस ओतप्रोत हो लोक-मंगल के लिए सतत आकांक्षी दिखाई पड़ता है—गोस्वामी जी ने तो अपना काव्य लक्ष्य स्थिर करते हुए इस लोकहित के आदर्श को उद्घोषित किया है—

"कीरति भनिति भूति भलि सोई,
सुरसरि सम सवकर हित होई।"

गोस्वामी जी इसी उद्देश्य को सतत हृदयंगम कर काव्य सर्जना में प्रवृत्त हुए। गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के पावन चरित्र को अपनी वाणी का विषय बनाया। यह राज परिवार पूर्ण मर्यादित धर्मभीरु, सत्य प्रतिज्ञ, बल-विद्या विवेक-वैभव में अप्रतिम है। इस परिवार में गुरुजनों का समादर है। महाराज दशरथ अपने लाड़ले प्राणों से प्यारे राम लक्ष्मण को मुनि विश्वामित्र की यज्ञ की रक्षा के लिए सौंप देते हैं। उनका वात्सल्य भले ही मसोस उठता है किन्तु क्या साहस कि मुनि की याचना में वे हिचकें। महाराज दशरथ का सत्य प्रतिज्ञ रूप राम वनवास के अवसर पर निखर उठा है। वे अपने बचन को अन्यथा सिद्ध न करने के लिए एक ओर राम को बनवासी और भरत को राज्याभिषेक के दृढ़ निश्चय पर अटल रहे। पुत्र वात्सल्य से विह्वल मन शोक से उद्वेलित है :

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

गोस्वामी जी ने समाज के सभी वर्गों का मर्यादित स्वरूप वर्णित किया है। राजवंश, मुनी वर्ग, वनचर, कोल-किरात, केवट सभी स्वधर्म निरत निरूपित किये गये हैं। यही नहीं उन्होंने देवता और राक्षसों के चरित्रों का भी उद्घाटन उसी सहज स्वाभाविकता के साथ किया है। धनुर्धारी राम का

अवतार पृथ्वी पर मर्यादा की व्यस्थापना, देवी सम्पदा और धर्म-आचरण की रक्षा के लिए है। उन्होंने असुरों के विनाश को अपना कर्त्तव्य समझा, मर्यादा पुरुषोत्तम राम के गो, द्विज, देव रक्षक स्वरूप को निखारने में गोस्वामी जी की कला अमर हो उठी है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गोस्वामी जी ने मानव मात्र के सम्मुख राम जैसे आज्ञापालक पुत्र, दशरथ जैसे दृढ़ प्रतिज्ञ, धर्म भीरु गुरु भक्त एवं सत्य-वादी के, सीता जैसी साध्वी, पतिपरायणा, सास, ससुर, परिजन पियारी नारी, लक्ष्मण जैसे अनुज आज्ञाकारी, ब्रह्मचारी, भरत जैसे 'भायप भगति' पूरित आदर्श चरितावलियों का प्रभाव पूर्ण वर्णन किया। अपने मर्यादा विहीन पापपरायण समाज के सम्मुख एक श्रद्धा भक्ति भाव पूरित काव्य की रचना कर समाज को पतन के गर्त में गिरने से बचा लिया, नहीं तो वह विलासी समाज अपनी रीति-नीति मर्यादा और संस्कृति को विस्मृत कर पापाचार, भ्रष्टाचार के पतन गर्त में गिर पड़ा होता।

गोस्वामी जी के समय भारत धर्म निरंकुश राजतंत्र की प्रताड़ना शोषण, अपमान और विलास का साधन बना हुआ था। वहाँ बादशाह सलामत का वाक्य ही कानून था।

राजा प्रजा का पालक अपने सहायकों को मित्र के समान स्वीकृत करता है। यही कारण है कि पूरी प्रजा राज भक्त राजा को स्वामी और इष्ट देव 'प्रान-प्रान के जीवन जी के' समान मानती थी। अयोध्या की पूरी प्रजा राजा राम के साथ उनके वियोग में विह्वल हो चल पड़ी। भरत के चित्रकूट जाने की मंत्रणा चातकों के स्वाती की वर्षा के समान सिद्ध हुई और प्यारे राम के दर्शन के लिए वियोग व्यथा मारी प्रजा राम को मनाने चित्रकूट तक चल पड़ी। राजा प्रजा का हितकारी और धर्म अर्थ का मोक्ष साधक तथा सन्मार्ग में प्रेरित करने वाला निरूपित हुआ है।

गोस्वामी जी के काव्य में अपूर्व सामञ्जस्य दिखाई पड़ता है उन्होंने ज्ञानी और भक्त के निर्गुण और सगुण, ज्ञान और भक्ति के परस्पर विरोध को बड़े विनीत संयत एवं विवेकपूर्ण तर्कों से शामिल किया है, साथ ही ज्ञानी से भक्त की निर्गुण से सगुण की महत्ता को प्रतिपादित किया है। उत्तरकाण्ड में ज्ञान दीपक रूपक में जहाँ ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति को कष्ट साध्य और अनेक विघ्नों से प्रतिहत बताया वहीं भक्ति को मणिप्रदीप की तुलना दी हैं वह

हमारी अविचल निष्ठा से उद्भूत हैं। गोस्वामी जी ने शैव और वैष्णव के विरोध को प्रशान्त करने के लिए राम को शिव भक्त और राम की भक्ति की परीक्षा शिव भक्ति से की गई है। उनके शिव 'सेवक स्वामी सखा सिय पिय के' हैं। गोस्वामी जी ने राम भगति की सुरसरि से सम्पूर्ण जनमानस के लिए अपूर्व शांति और मोक्ष का साधन जुटा दिया। उनका राम नाम स्वयं राम से बढ़कर है तभी तो भगवान् शिव ने राम नाम को ही कोटिशः रामायण का मूल समझा—

ब्रह्म राम ते नामु बढ़ वरदायक वरदानि।
रामचरित सत कोटि महँ, लिय महेश जिय जानि॥

× × ×

उनके यहाँ भक्त स्वयं राम से बढ़कर बताया गया है—राम भक्ति को ही मोक्ष का साधन बताया गया है, भक्त सदा भगवान् की रूप-माधुरी पर आसक्त रहता है, उसे भक्ति मोक्ष से भी प्यारी है जो अपने इष्टदेव के सान्निध्य को ही परम लाभ मानती है।

"भरत अकेलेपन से उबर सके, आत्मनिर्वासन से टूटे नहीं क्योंकि उनके सामने राम का राज्य ज्यों-का त्यों लौटा देने तथा मातृप्रेम से च्युत न होने का लक्ष्य था। सीता अशोक-वाटिका में शत्रुओं के बीच अश्रुपूरित नेत्रों से राम के आने की प्रतीक्षा करती रहीं। राम के प्रति विश्वास ही उनकी दारुण स्थिति में सहारा बना। रावण से लड़ते हुये राम को बार-बार संशय घेरता है, पर अपनी प्रतिज्ञा और प्रिया के उद्धार का लक्ष्य उन्हें अंततः विजयी बना देता है।

इस प्रकार आधुनिक परिवेश में जिन दबावों से हम पिस जाते हैं, उनसे उबरने में मानस काफी सहायता करता है। वह हमें जीने और संघर्ष करने का विश्वास प्रदान करता है।"

—डा॰ शिवप्रसाद सिंह

मानस के शाश्वत मूल्य

—डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी

रामचरित मानस की आधुनिकता उसकी शाश्वतता में है। इसका आधार राम-कथा है। श्री तुलसीदास ने इसमें रामकथा का साङ्गोपाङ्ग-वर्णन किया है। कवि क्रान्तदर्शी होता है। उसका संबन्ध भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों से रहता है। वह भूतकाल के घटनाचक्र का सम्बन्ध वर्तमान से स्थापित करता है और भविष्य के लिए महनीय निर्देश छोड़ जाता है, जिससे उसके चिन्तन की दिशा का वोध होता है। महाकवि तुलसीदास को भी इसी कसौटी पर कसा जा सकता है। रामचरित मानस के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन्होंने विश्व की कतिपम शाश्वत समस्याओं को सामने रखा है और उनका समाधान प्रस्तुत किया है, शाश्वत समस्याओं का समाधान भी शाश्वत होगा, अतः ग्रन्थ का शाश्वत महत्व होता है।

विश्व की शाश्वत समस्याओं का हल निकालने के लिए विश्व के दार्शनिकों, मनीषियों, महाकवियों और चिन्तकों ने अपनी-अपनी दृष्टि से समाधान प्रस्तुत किए हैं। एक ओर पाश्चात्य मनीषी विचारक और दार्शनिक हैं, दूसरी ओर भारतीय मनीषी और विचारक। दोनों की विचारधारा में मौलिक अन्तर है। पाश्चात्य विचारधारा ऐहलौकिक जीवन को समुन्नत, सुसंस्कृत और विकसित करने पर वल देती है। उनका दृष्टिकोण मूलतः भौतिकवादी है। भौतिक उन्नति, भौतिक सफलता और भौतिक समृद्धि जीवन का परम लक्ष्य है। भौतिक उन्नति के लिए ज्ञान और विज्ञान दोनों का आश्रय लिया जाता है। जो देश वैज्ञानिक दृष्टि से जितना उन्नत है, वह उतना ही विकसित और सुखी माना जाता है। इस विकास की भावना में स्वार्थतत्व प्रमुख रहता है और परार्थतत्व गौण। स्वार्थतत्व की प्रधानता का परिणाम यह होता है कि आत्मोन्नति के लिए वैध और अवैध साधनों का प्रयोग वांछनीय और अवांछनीय साधनों से धनोपार्जन, परहित या परसुख के प्रति उदासीनता, नैतिक मूल्यों के प्रति उपेक्षभाव, आचार और धर्म

के प्रति निरादर-भाव, पर-दुःख के प्रति अनवधानता और स्वार्थसिद्ध के प्रति एकाग्रता।

दूसरी ओर भारतीय विचारधारा मूलतः अध्यात्म-प्रधान है। वह भौतिक उन्नति की अपेक्षा चारित्रिक उन्नति, आध्यात्मिक उत्कर्ष और अन्तर्मुखी वृत्ति को प्रधानता देती है। वह जीवन का लक्ष्य भौतिक उन्नति की अपेक्षा आत्मिक सुख और शान्ति को मानती है। यदि जीवन में आत्मिक सुख और शान्ति है तो वह जीवन सफल है।

तुलसीदास भारतीय विचारधारा के प्रतीक हैं। उन्होंने मानवीय समस्याओं पर विचार किया है और उनका हल निकाला है। मनुष्य दुःखी क्यों है ? मनुष्य की चिन्ताओं का कैसे निवारण किया जा सकता है ? जीवन में अध्यात्म की क्या आवश्यकता है ? सुख और शान्ति का क्या उपाय है ? क्या अध्यात्म और आस्तिकता मानवमात्र का कल्याण कर सकती है ? इत्यादि विषयों पर स्थान-स्थान पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

आज मानव-जीवन दुःखित और चिन्तित है। उसके सामने सुख और शान्ति की समस्या है। वह जीवन में शान्ति के लिए चारों ओर तृष्णाभरी दृष्टि से देख रहा है। विज्ञान की चकाचौंध उसे सहसा आकृष्ट कर लेती हैं, पर उसे शान्ति नहीं दे पाती। विज्ञान मानव की सुख-लिप्सा को पूर्ण करने का प्रयत्न करता है, पर उसमें स्थायी सुख नहीं है। विज्ञान मरु-मरीचिका के तुल्य मानव की तृष्णा और भोग-वासना को उद्दीप्त कर देता है और उसे अनर्थ की ओर अग्रसर करते हुए पथ भ्रष्ट कर देता है पाश्चात्य दर्शन उसके सामने समाधान के स्थान पर समस्याएं प्रस्तुत करता है, भौतिक सुख ही सर्वस्व है। ईश्वर, धर्म, परलोक मोक्ष, आदि के प्रति जन-मन में सन्देह की भावना पाश्चात्य विचारधारा के कारण जागृत हुए हैं। इसका परिणाम सुखद हुआ है या दुःखद, यह विवेचनीय विषय है।

तुलसीदास ने दुःख का कारण ईश्वर से विमुखता को माना है। जीवन में भक्ति की वही आवश्यकता है, जो भूखे के लिए अन्न की, और पिपासित के लिए जल की।

निज अनुभवि अब कहउँ खगेसा।

बिन हरि भजन न जाहिं कलेसा।।

जाने बिनु न होइ परतीती ।
बिनु परतीती होइ नहिं प्रीती ।।
प्रीति बिना नाहिं भगति दिढ़ाई ।
जिमि खगपति जल कै चिकनाई ।। [रामचरित उत्तरकांड]

सांख्यदर्शन में अध्यात्म-ज्ञान को त्रिविध दुःख का ऐकान्तिक और आत्यन्तिक निवारक मानते हुए उसकी उपादेयता को अनिवार्य माना है । उनका कथन है––

दुःखत्रयाभिघाज् जिज्ञासा तदपघातके हेतौ ।
दृष्टे सापार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ।।
(सांख्यकारिका १)

भक्ति आत्मचिन्तन का साधन है, अतः तुलसीदास ने भक्ति पर बहुत बल देते हुए उसे त्रिविध दुःख का नाशक बताया है ।

देहु भगति रघुपति अति पावनि ।
त्रिविध ताप भव दाप नसावनि ।। (उत्तरकाण्ड)

बिन गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ।।
(उत्तर० ८९)

जीवन में सुख और शान्ति का आधार सन्तोष है जहाँ सन्तोष धन नहीं है, वहाँ अशान्ति का साम्राज्य है । मानवीय तृष्णा का अन्त नहीं है, अतः मानव अशान्त और दुःखित है । अतएव गौतम बुद्ध ने सन्तोष को परम धन, निर्वाण को परम सुख और विश्वास को परम बन्धु बताया है ।

आरोग्यपरमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनं ।
विस्सासपरमा ञाती निब्बाणं परमं सुखं ।। (धम्मपद २०४)

तुलसीदास ने सन्तोष से कामभावना का नाश और परम सुख का लाभ बताया है । श्रद्धा और विश्वास को ईश्वर प्राप्ति और राम कथा का साधन बताया है । रामकथा के बिना जीवन में न शान्ति, न सुख और न विश्राम है ।

कोई विश्राम कि पाव तात सहज सन्तोष विनु।
चलै कि जल विनु नाव कोटि जतन पचि-पचि मरिअ ।।

(उत्तरकाण्ड)

विनु सन्तोष न काम नसाहीं।
विनु विश्वास भगति नहि, तेहि विनु प्रवहिं न रामु।
रामकृपा विनु सपनेहुँ जीव न लह विश्रामु ।।

(उत्तरकाण्ड ९०)

दुःख के कारणों का विवेचन करते हुए तुलसीदास काम, क्रोध, मद, लोभ आदि को माया का परिवार वनाते हैं। वस्तुतः माया का वन्धन तभी तक मानव को आतंकित और विषण्ण करता है, जवतक उसकी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होकर अध्यात्म की ओर प्रवृत्त नहीं होती।

मोह न अंध कीन्ह कहि केही। को जग काम नचावन जेही।
तृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ।।
चिन्ता सांपिनि को नहि खाया। को जग जाहि न व्यापी माया।
यह सव माया कर परिवारा। प्रवल अमिति को वरनै पारा ।।
जो माया सव जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा ।।
सोइ प्रभु भूविलास खग राजा। नाच नटी इव सहित समाजा ।।

(रामचरित० उत्तरकाण्ड)

जव मानव के हृदय में अध्यात्म भानु का उदय होता है तव उसके हृदय से माया-मद-मोह-तम का सहसा उन्मूलन हो जाता है। तुलसीदास कहते हैं :—

इहाँ मोहकर कारन नाहीं। रवि सन्मुख तम कबहुं कि जाहीं ।।

(राम० उत्तरकाण्ड)

तुलसीदास ने नाम स्मरण का अनेक प्रकार से महत्व वर्णन किया है। महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में ईश-नाम स्मरण को दुःखों का नाशक बताया है।

तज्जपस्तदर्थभावनम्। (योगदर्शन १–२८)

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। (योगदर्शन १–२९)

इसी प्रकार तुलसीदास ने नाम स्मरण को दुःखनाशक ही नहीं, अपितु सभी प्रकार की सिद्धियों का आधार भी माना है।

साधक नाम जपहिं लय लाए। होंहिं सिद्ध अनिमादिक पाए।
जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होंहिं सुखारी॥

(बालकाण्ड)

राम-नाम को मणि-दीप मानते हुए जीभ-देहरी द्वार पर रखने का जो आग्रह तुलसीदास ने किया है वह वस्तुतः स्तुत्य और प्रशंसनीय है। क्योंकि इससे बाह्य जीवन और आन्तरिक जीवन, लोक और परलोक, स्वार्थ और परार्थ सिद्ध होते हैं।

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरेहुँ जौ चाहसि उजिआर॥

(बालकाण्ड २१)

ईशोपनिषद में ईश्वर की सर्वव्यापकता को मानते हुए उसके नियन्त्रण और अनुशासन में सात्त्विक जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दी गई है। उसी प्रकार तुलसीदास ने ईश्वरीय अनुशासन पालन पर बल दिया है जो ईश्वरीय अनुशासन का पालन करेगा वह नाना दुःखों से मुक्त होकर शाश्वत सुख का पात्र होगा।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥ (ईश० १)
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई।
मम अनुसासन मानै जोई॥ (उत्तरकाण्ड)

इस प्रकार सूक्ष्म विवेचन से रामचरित मानस शाश्वत तत्त्वों का आकर ज्ञात होता है। यह जीवन की भूत, वर्तमान और भविष्यत् अर्थात् त्रिकाल की समस्याओं का सात्त्विक समाधान प्रस्तुत करता है। यह जीवन की आध्यात्मिक प्रवृत्ति की दुःख शमन का साधन बनाते हुए परम पुरुषार्थ एवं परम तत्त्व की ओर अग्रसर करता है।

रामकथा और नये वातायन

—शंभुनाथ, आई० ए० एस०

चार सौ वर्षों के वाद भी 'मानस' में नये प्रतीकों तथा प्रतिमानों को हेरने की संभावना क्षीण नहीं हुई है। आज भी कवि अपनी मनःस्थितियों को व्यक्त करने हेतु मानस के मिथकोय एवं पौराणिक प्रसंगों की ओर झाँकता है। भरत के एकाकीपन एवं आत्म-निर्वासन में अभी ताजापन है। स्वर्णमृग के पीछे भागते राम का प्रतीक नये कवि के लिये आज के आदमी की 'स्वर्ण-लिप्सा' (Gold Rush) के 'थीम' को व्यंजित करती है। बनवास की घटना में भी अभी टटकापन बाकी है। 'बच्चन' की पंक्ति है :

'तन की सौ-सौ सुख-सुविधा में मेरा मन वनवास दिया-सा।'

सम्पन्नता और समृद्धि के बीच भी निर्वासित (alienated) होने का एहसास आज के आदमी के साथ घटित एक दुस्सह 'ट्रेजडी' है। उन्नीसवीं शताब्दी में ही कवि वड्र्सवर्थ ने लिखा था :

"Little we see in Nature that is ours."

और, फिर कार्ल मार्क्स ने कहा :

"All these consequences flow from the fact that the worker is related to the product of his Labour as to an *alien* thing."

बीसवीं शताब्दी में निर्वासन एवं पार्थक्य (Alienation) अत्यन्त ही त्रासद भाव से उजागर हुआ है। हरबर्ट रीड की निम्नांकित पंक्तियों को लें :

"Never before in the history of our western world has the divorce between man and his fellow-men, between individual man and his 'self hood' been so complete. To change the world meaning the prevailing economic system is not enough. The fragmanted psyche must be reconstituted and only the creative therapy we call 'Art' offers that possibility."

राम कथा में वनवास की 'ट्रेजडी' निर्वासन (alienation) के 'थीम' की अभिव्यंजना करती है। राम-बनवास के परिणामतः दशरथ की मृत्यु होती है, भरत आत्म-निर्वासित, एकाकी जीवन बिताते हैं, अयोध्या शोक निमग्न होती है और लक्ष्मण एवं सीता भी वनवासी बनते हैं। वनवास को नियति मानकर राम ने अपने राजसी वस्त्र और आभूषण वैसे ही त्याग दिये, जैसे तोता पंख त्यागता है।

"कागर कीर ज्यों भूषन चीर सरीरु लस्यो तजि नीर ज्यों काई।
मातु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभायँ सनेह सगाई ।।
संग सुभामिनि, भाई भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई ।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राजु बटाउ की नाईं ।।"

'बटोही' और 'पहुनाई' की मार्मिक अभिव्यक्ति में आज के आदमी का अजनबियत करुणतम रूप से व्यंजित है। ए० ई० हाउसमैन की पंक्तियों को लें :

"For nature, heartless, witless nature
Gill neither care, nor know
What stranger's feet may find the meadow
And Tresspass there and go."

इस अजनबियत को तुलसी ने स्वयं जिया एवं भोगा था। कालान्तर में अपने मध्ययुगीन समाज में तुलसी स्वयं अजनबी हो गये थे। अनुभव की प्रामाणिकता तो इसी में है कि उनके जीवन में ऐसे दुर्दिन आये जब न जीने को कोई ठौर रहा, न कोई ठिकाना। ("जी जे न ठाऊँ न आपन गाऊँ, सुरालय हूँ को न 'सम्बल मोरे' : कवितावली) समाज से बहिष्कृत, संदर्भ से कटा, बेठौर, बेघर का आत्म-निर्वासित जीवन आज के आदमी के पार्थक्य (alienation) की 'ट्रेजेडी' से कितना निकट है। अपनी पुस्तक 'द सेन सोसायटी' (The Sane Society) में एरिक फ्रॉम ने 'alienation' की जो परिभाषा दी है, उसे यहाँ रखना समीचीन होगा :

"By alienation is meant a mode of experience in which the person experiences himself as an alien. He has become, one might say, estranged from himself. He does not experience. himself as the centre of the world, as the creator of his own acts—but his acts and theirs consequences have become his

masters, whom he obeys, or whom he may even worship. The alienated person is out of touch with himself as he is out of touch with any other person. He, like the others, is experienced as things are experienced ; with the senses and the common sense, but at the sametime without being related to himself and to the world outside productively."

स्पष्ट है कि निर्वासन (alienation) की 'ट्रेजडी' को रामकथा में वनवास-प्रसंग करुणतम रूप से व्यञ्जित करता है। संदर्भ से पृथक (alienated) हो जाने की स्थिति को कवितावली की यह पंक्ति 'आखिन में सखि ! राखिबे जोगु, इन्है किमिकै वनवास दियो है, सशक्त रूप से स्पष्ट करती है। राम, लक्ष्मण एवं सीता को वनवासी देखकर सभी पछताते हैं। उन के मनमें यह प्रश्न कौंधता है कि यदि इन्हें निर्वासित किया गया तो सुख-सुविधाओं से आपूरित संसार का सृजन ही क्यों किया गया ?

"ए महि परहि असि कुस पाता। सुभग सेज का सृजन विघाता ।।
तरुवर वास इन्हि बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि-रचि श्रम कीन्हा ।।"

पलंग-पीठ, गोद और हिंडोरा को छोड़ कर कोमलांगी राजपुत्री जानकी ने कठोर अवनि पर कभी पैर नहीं रखे थे। और, अब

"पुरतें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दए मग मैं डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जलकी, पुट सूखि गए मधुराधर वै ।।
फिर बूझति हैं, चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै ।।"

संगिनी की अनकही व्यथा से अभिभूत होकर राम साश्रु-नयन हो उठते हैं। बन मार्गों पर भटकती सीता की 'छविग्रह दीप सिखा जनु बरई' वाली कान्ति मिट चुकी है। क्लान्त, थकी जानकी; पसीने से डबडबाया चेहरा, सूखे ओठ...

सौन्दर्य के नये प्रतिमान हमें इस क्लान्त, शुष्क रूप की ओर आकर्षित करते हैं। सुघड, सलोने, तरल और तराशे हुये आकृति-बन्ध अब सौन्दर्य के प्रतिमान नहीं। नये संदर्भों में सौन्दर्य की सझान तो आकृतिहीनता (Patternlessness) की ओर है। अब 'कैक्टस' में 'अपील' दीखता है। इस नये सौन्दर्य-बोध को टॉमस हार्डी ने इन शब्दों में व्यंजित किया है :

"In Clym yeobright's face could be dimly seen the typical countenance of the future...The view of life as a thing to be put up with replacing that gest for existence which was so

intense in early civilization, must ultimately enter so thoroughly into the constitution of the advanced races that its facial expression will become accepted as new artistic departure. Physically beautiful men—the glory of the race when it was young—are almost anachronism now; and we may wonder whether, at some time or other physically beautiful woman may be an anachronism likewise.''

(from : ''The Return of the Native')

जिस सीता के सौंदर्य का उपमान ढूंढने में कवि को सारी उपमायें जूठीं लगी थी ('सब उपमा कवि रहे जुठारी'), वनवास की अन्तर्निहित विडम्बना (Irony) वहीं स्पष्ट करती हैं कि 'झलकी भरि भाल कनीं जलकी, पुट सूखि गये मधुराधर वै ।' वनवास के ठीक पहले सीता ने सहज, अनजाने ढंग से कह दिया था :

"जिय विनु देह नदी विनु वारी ।
तैसिअ नाथ पुरुष विनु नारी ।।"

त्रासद पूर्व संकेतों से बोझिल ये पंक्तियाँ सीताहरण के साथ कौंध कर कथावस्तु की अन्तर्निहित विडम्वना को पुनः उजागर करती हैं। रामकथा का दुःखद प्रवाह विलगाव (Isolation) के 'थीम' की भी अभिव्यञ्जना करता है। प्रियाहीन थके, टूटते, झटकते, मात्र वादलों की गरज से डरते राम का यह स्वरूप आज के आदमी की टूट, थकान, भय और अनिश्चितता के कितने करीब का है। सीताहरण के बाद की घड़ियाँ राम के जीवन में संघर्ष की घड़ियाँ हैं। बात हारी हुई परिस्थितियों में अपने को फिर से 'एसर्ट' करने की है। राम अस्तित्व-संघर्ष की चुनौतियों को स्वीकारते हैं।

आज के अस्तित्ववादी चिन्तक (Existentialist philosophers) मानते हैं कि अस्तित्व का कोई दैवी पूर्व-नियोजन नहीं है एवं इस योजना-विहीन ब्रह्माण्ड में मानव को अपना स्वरूप स्वयं गढ़ना है, क्योंकि अस्तित्व (Existence) 'एसेंस' से पहले है और मनुष्य को स्वयं अपने स्वरूप गढ़ने की भयावह स्वतंत्रता (Dreadful freedom) है। इस अस्तित्वगत चुनौती को स्वीकारते हुए राम स्वयं अपनी नियति से टक्कर लेते हैं एवं अपना स्वरूप गढ़ते हैं। अयोध्या या मिथिला से उधार माँगी सैन्य सहायता मे अपने 'रामत्व' को 'एसर्ट' करना राम को मंजूर नहीं, यद्यपि ऐसा करने में उन्हें कोई बाध्यता नहीं थी। अपनी क्रूर नियति (Nemesis) से राम स्वयं ही जूझना पसंद करते हैं—अपने ही बूते पर। वह स्वयं को गढ़ने की 'भयावह स्वतंत्रता' को स्वीकार करते हैं।

तथापि, अस्तित्ववादी चिन्तन एवं रामकथा के इस संघर्ष-प्रसंग में अंतर है। दार्शनिक सार्त्र ने 'नौसिया' (Nausea) में स्पष्ट किया है कि जीवन में कोई पद्धति (Pattern) नहीं है और न जीवन-क्रम में कोई अर्थपूर्णता है। पर, रामकथा का संघर्ष अर्थपूर्ण है। यह संघर्ष नैतिक जीवन मूल्यों की खातिर है। राम अर्थहीनता से आक्रान्त नहीं। ऐसे, जीवनगत अर्थहीनता का अस्तित्ववादी दार्शनिक किर्केगार्द ने धर्मनिष्ठ निदान आस्था में पाया था। मंजुल, मनोहर रामकथा भी आस्था की कथा है, जो मन से संदेहों को दूर करती है :

"रामकथा सुन्दर करतारी। संसय विहग उड़ावनहारी ॥"

कवि टेनीसन की रचना 'इन मेमोरियम' (In Memoriam) की भाँति 'मानस' संशय से श्रद्धा तक की यात्रा है। मानस की कथा-योजना उमा-शंभु संवाद है। कथाक्रम में यह भरद्वाज-याज्ञवल्क्य एवं गरूड़-काग-भुशुंडि संवाद का स्वरूप ले लेता है। उमा, विहगनायक गरुड़ आदि संदेह पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। पार्वती की उक्ति है :

"नाथ एक संसऊ बड़ मोरे। करगत वेद तत्व सबु तोरें ॥'

और कथा के अन्त में जब उमा की श्रद्धा उमगती है, तब वह कह उठती है :

"नाथ कृपा मम गत संदेहा। राम चरन उपजेऊ नव नेहा ॥"

स्पष्टतः रामकथा संदेह (Scepticism) से आस्था (Faith) तक की यात्रा है। पर, युगीन अनास्थाओं में उलझा आज का बेचैन आदमी अभी इस के अर्द्ध-पथ में ही है। स्वयं तुलसी ने अपनी काव्य-यात्रा के अन्त में अनास्थामूलक प्रश्न चिन्ह खींचे है। असाध्य रुग्णता एवं पीड़ा से जर्जर तुलसी को 'हनुमान बाहुक' की रचना में पहली बार यातना एवं अनास्था की भयावह अनुभूति हुई है और आज के बेचैन मानव की तरह तुलसी स्वयं प्रश्न चिन्हों के बीच घिर गये हैं। रमेश कुन्तल मेघ के शब्दों में

"अन्त में वह अपने भक्ति, वैराग्य, ज्ञान आदि के सभी श्रद्धा विश्वास दाँव पर रख देता है क्योंकि उसे सन्देह होता है कि माया, जीव, काल, कर्म आदि के बारे में जो वेद कहते आये हैं या जो वह स्वयं ईश्वर की कृपा तथा शक्ति के बारे में आज तक विश्वास रखता चला आया है—क्या वे सच भी हैं ? यह तुलसी के यथार्थ जगत् में मानों 'पुनर्जन्म' है। इसके उपरान्त तुलसी के कृतित्व का अन्त हो जाता है।"

———

मानस और विद्रोह की रेखायें

—शंभुनाथ, आई. ए. एस.

रामचरितमानस कवि तुलसी की युवावस्था की रचना है। आत्मकथात्मक दृष्टि से यह रचना अन्तर्मन की एक ऐतिहासिक क्रान्ति का परिणाम है। रत्नावली के प्रति प्रबल, कुण्ठित आग्रह को भक्तिमूलक आध्यात्मिकता में परिवर्त्तित करने में जो अन्तस्थल में क्रान्ति घटित हुई होगी रामवृत्त का चयन एवं लेख उसी की गवाही है। 'स्वान्तः सुखाय' के 'कैथेर्सिस' (Catharisis); एवं कुण्ठा से अध्यात्म तक की मनोवैज्ञानिक यात्रा के अतिरिक्त, युवावस्था की रचना होने के कारण मानस की क्रान्तिकारिता विलक्षण है। मानस में विद्रोह जिस धरातल पर घटित होता है. वहाँ कोई क्रान्तिकारी 'मैनिफेस्टो' का उद्घोषपूर्ण कोलाहल नहीं, बस नई दिशाओं की हल्की आहट भर है।

तुलसी को जीवन में घोर परम्परावादियों एवं कट्टरपन्थियों से जूझना पड़ा था। वर्णाश्रम व्यवस्था की रूढ़िवादिता के प्रबल समर्थकों के लिये, तुलसी ने स्पष्ट कर दिया था, "मेरे जाति-पाँति न चहौं काहू की जाति-पाँति" (कवितावली) और निपट निठुराई से स्पष्टवादिता यहाँ तक कि—

"धूत कहौ, अवधूत कहौ, राजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों, बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारब न सोऊ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको, रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि के खैबो, मसीत को सोइबो, लैबो को एकु न दैबे को दोऊ॥"

'राजपूत कहो या जुलाहा-क्या फर्क पड़ता है' इस मनोवृत्ति में वर्णाश्रम वादी व्यवस्था पर तुलसी का प्रहार स्पष्ट है। अपने जीवन-काल में निरन्तर काशी के कट्टर परम्परावादी पंडितों से तुलसी की टक्कर होती रही। जनश्रुति है कि पंडितों ने तो मानस को तब तक अंगीकार नहीं किया जब तक उसे दिव्य एवं दैवी सम्मति नहीं प्राप्त हुई।

तुलसी जीवन परम्परा के वाहक हैं, मृत परम्पराओं से अलग एवं नयी परम्पराओं के सर्जक भी। देवी देवताओं की आराधना करते समय 'बालकाण्ड' में तुलसी की दृष्टि दुष्ट-जनों पर भी जाती है। जीवन का सम्पूर्ण अंगीकार ही धार्मिक व्यक्ति की पूर्णता है तथा, साथ ही, साहित्यकार की विलक्षण उपलब्धि भी। खल-वन्दना करना मानसकार की साहित्यिक विराट्ता के अतिरिक्त स्वयं में स्वीकृत परम्परा से एक विद्रोही प्रस्थान भी है।

तुलसी के विद्रोही स्वरूप का मुखर प्रमाण रावण के चरित्र में रंग भरने में है। 'सिय राम मय सब जग जानी' कहने वाले भक्त कवि ने रावणत्व में भी रामत्व के रंग भर दिये हैं एवं फक्कड़, वैरागी, परमतत्त्वदर्शी कबीर सा कह उठा है 'जित देखो तित लाल।' 'बालकाण्ड' में भानुप्रताप की कथा को रखने में तुलसी का अभिप्राय स्पष्ट है। भानुप्रताप जनप्रिय एवं प्रतापी राजा था जो कथा-क्रम में कपट का निर्दोष शिकार बनता है। पाठक की सहज सहानुभूति सहज ही ठगे जाने वाले निश्छल भानुप्रताप के साथ होती है, जो रामवृत्त में एक शापग्रस्त जीवन लिये रावण के रूप में अवतरित होता है। शाप से मुक्ति (redemption) ही उसके अस्तित्व का प्रयोजन है। और मुक्ति के जीवनवाहक श्रीराम हैं, जिनके स्पर्श से ही पाषाणी गौतम नारी का उद्धार होता है। परम्परानिष्ठ राम कथा का खलनायक रावण; तुलसी की तूलिका में चूड़ान्त खलनायक नहीं, बल्कि एक वैसा ही अनोखा राम भक्त है जैसा प्रेम लपेटे अटपटे बैन बोलनेवाला केवट और मुक्ति का वैसा ही अभिशप्त, मूक आकांक्षी है जैसी शापग्रस्त तापस-तिय अहल्या। खर और दूषण की मृत्यु से हो धर्म और नीति का विलक्षण पंडित रावण ताड़ जाता है कि ईश्वर मनुज शरीर में अवतरित हो चुके हैं तथा चिर-प्रतीक्षित मुक्ति हेतु अब शत्रुता अपरिहार्य है। कितनी अद्‌भूत बात है कि भक्ति, ज्ञान और कर्म के अतिरिक्त प्रभु प्राप्ति में दशशीश लंकेश का मार्ग शत्रुता का है :

"खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवन्ता।।
सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा।।
तौ मैं जाई बैरु हठ करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ।।"

रावण के परम्परानिष्ठ क्रूर खलनायकी बिम्ब से मानसकार का यह प्रस्थान विद्रोहपूर्ण दुस्साहस है। यही नहीं, तुलसी ने अपने चरित्रनायक के परम्परागत बिम्ब (Image) में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन किये हैं।

आदि कवि वाल्मीकि के राम महामानव हैं। वह विष्णु के सदृश शक्तिमान हैं (विष्णुना सदृशो वीर्ये)। कालान्तर में राम एवं विष्णु का द्वैत समाप्त हो जाता है तथा राम विष्णु के अवतारी स्वरूप समझ लिये जाते हैं। मानसकार के समक्ष राम को विष्णु के स्वरूप मान लेने तथा युगीन मत-मतान्तरों में शैव और वैष्णवी खेमें को चुनने की समस्या थी। विद्रोही तुलसी ने राम के अंशावतार होने की परम्परानिष्ठ धारणा को अस्वीकार दिया तथा शैव और वैष्णव मतों में समन्वय संभव कर पाने का ऐतिहासिक निर्णय लिया। उन्होंने राम का स्थान त्रिदेवों से ऊपर दिया तथा राम को साक्षात् परम ब्रह्म परमेश्वर माना। जनश्रुति तथा मिथकीय परम्परा से इस प्रच्छन्न प्रस्थान को मनु-शतरूपा की कथा स्पष्ट करती है। मनु-शतरूपा जिस ब्रह्म की उपासना में द्वादश-अक्षर मंत्र का जाप करते हैं, उस परमेश्वर का निरूपण वेदों ने 'नेति-नेति' से किया है तथा

"संभु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना ॥"

यही नहीं, तप के क्रम में कई बार मनु एवं शतरूपा के समक्ष ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश आये, वरदान का प्रलोभन दिया। पर तपी-युग्म डिगे नहीं

"विधि हरि हर तप देख अपारा। मनु समीप आए बहु बारा ॥
माँगहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए ॥"

मनुशतरूपा के समक्ष अन्ततः स्वयं परमब्रह्म परमेश्वर प्रकट होते हैं जिनके चरणरज की वंदना ब्रह्मा, विष्णु और शिव करते हैं (विधि हरि हर वंदित पद रेनु।) परमेश्वर ने तपनिष्ठ दम्पति को आश्वासन दिया था कि वह स्वयं पुत्र बनकर राम के रूप में लीलार्थ जन्म लेंगे (नृप तव तनय होब मैं आई।)

स्पष्ट है कि शैव एवं वैष्णवों के खेमेगत विवाद से ऊपर उठकर तुलसी ने राम के बिम्ब में क्रांतिकारी परिवर्त्तन किये जो "नाना पुराण निगमागम सम्मत" होते हुये भी अभिनव है। 'काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब, काहू को जात बिगारब सोऊ' कहने वाले कवि का चरितनायक राम जानकी से विवाह करता है—जानकी जो अज्ञातकुलशीला है। वर्णाश्रम धर्मग्रस्त सामाजिक ढाँचे को अस्वीकार कर अज्ञातकुलशीला को जीवन संगिनी बनाने में राम का विद्रोही स्वरूप स्पष्ट है। अनय का प्रतिक्षण प्रतिकार करनेवाले राम किसी भी विद्रोही की भाँति नये समाज की संरचना हेतु स्वप्नदर्शी

एवं कर्तव्यनिष्ठ हैं। बचपन से ही वे आसुरी शक्तियों से जूझते रहे हैं और व्यवस्था से आसुर वृत्तियों का निषेध सम्भव कर पाना ही उनके क्रांतिकारी अस्तित्व का ध्येय है। सीताहरण के पूर्व ही राम ने असुरों का अन्त करने को ठान लिया था :

"निसिचरहीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह"

मानसकार का स्वीकृत परम्परा से प्रस्थान राम एवं जानकी के 'प्रथम दृष्टि में प्रेम' (Love at the first sight) चित्रित करने में भी है। यद्यपि इसमें तुलसी का कवि मर्यादा की गरिमा के प्रति प्रतिक्षण जागरूक है तथा रहस्यमय संकेतों से प्रेम के इस नयेपन को 'प्रीति पुरातन' बता देता है। पुष्पवाटिका में पहली बार राम और सीता एक दूसरे को देख पाते हैं। जनकतनया ने तो नेत्रों के द्वार से ही राम की छवि को हृदय में उतार लिया---

"लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी ॥"

और राम ने ? प्रेम की स्याही से बेसुध चितेरे की भाँति हृदय की भित्तियों पर उस रूपसी को आँक लिया—

"परम प्रेममय मृदु मसी कीन्हीं। चारू चित्त भीत्ति लिख दीन्हीं ॥"

'पहली नजर का प्यार' आज पाश्चात्य देशों के प्रेमाचार का नया प्रतिमान बना हुआ है। स्पष्ट है कि चार सौ वर्षों के बाद भी मानस के संदर्भों का ताजापन अभी बाकी है।

इसके ताजापन का एक और सबूत है पीढ़ियों का संघर्ष जो त्रासद रूप से उभरा तो आज है, पर चार शताब्दियों पूर्व ही मानस के विराट् फलक पर चित्रित है। राम को राजगद्दी की जगह बनवास देने के प्रसंग से संयुक्त परिवार में टूट और बिखराव प्रारम्भ होता है। भरत और शत्रुघ्न जब अयोध्या लौटते हैं, तब उन्हें बनवास की दुःखद घटना मालूम होती है। आज की युवा पीढ़ी के युवकों की भाँति वे तिलमिला उठते हैं। भरत तो कैकेयी को "पापिनी सबहि भाँति कुल नासा" तक कहने में नहीं चूकते। उनके कथन कि "जननी तू जननी भई विधि सन कछु न बसाई" में आज के युग का पुरानी पीढ़ी के प्रति आक्रोश तीव्रतम रूप से व्यञ्जित है। क्रुद्ध युवा आक्रोश के प्रतीक लक्ष्मण भी हैं जो गेंद की तरह ब्रह्माण्ड को उठाकर कच्चे घड़े की तरह तोड़ डालने में सक्षम हैं। यह ध्यातव्य है कि इसे लक्ष्मण अपना स्वभाव

बताते हैं (कहऊँ सुभाउ न कछु अभिमानू) । लक्ष्मण की 'कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं' की उक्ति की तुलना टी० एम० इलियट के आधुनिक आदमी को प्रतीकित करने वाले पात्र 'प्रूफ्रांक' की उस मनःस्थिति से की जा सकती है, जो ब्रह्माण्ड को 'डिस्टर्ब' करने की गुत्थियों को सुलझाने-उलझाने में मग्न है :—

"Would it have been worthwhile,
To have squeezed the Universe into a ball
To roll it toward one overwhelming question"
('The Love Song of Alfred J. Prufrock' : T. S. Eliot)

प्रूफाँक द्वन्द्व में है किन्तु लक्ष्मण के मन में कोई द्वन्द्व नहीं। फिर लक्ष्मण का आक्रोश अमर्यादित नहीं हैं। लक्ष्मण सुमेरु पर्वत को मूली की तरह तोड़ने में सक्षम हैं पर, अनुशासन की सीमाओं का उल्लंघन वे नहीं कर सकते। वह कहते हैं "जौं राउर अनुसासन पाऊँ।" चार सौ वर्षों की बाद की युवा पीढ़ी ने मर्यादा के प्रत्येक कगार को तोड़ दिया है। ऐसे, कगारों के टूटने के धुंधले संकेत तो मानस में भी मिलते हैं। युवापुत्र भरत अपनी माँ कैकेयी को पापिनी. कुमति "सकल कपट अघ अवगुन खानी" तक क्रोध में कह जाते हैं।' क्रोध की उबाल में भरत तो यहाँ तक कह जाते हैं कि तेरे मुह में कीड़े क्यों नहीं पड़ गये ?' (गरि न जीह, मुंह परेउ न कीरा) इसी प्रकार जब अपने युवा पुत्र प्रहस्त की बातें रावण अनसुनी कर देता है, तब पुत्र पिता की भर्त्सना कठोर वचनों से करता है :

"सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि वचन कठोरा ।।
हित मत तोहि न लागत कैसे। काल बिबस कहुँ भेषज जैसे ।।

पीढ़ियों के द्वन्द का जो चित्रण तुर्गनेव ने अपने उपन्यास 'फादर एण्ड सन्स' (Father & Sons) में किया है तथा जिसे बीसवीं शताब्दी के महान् साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में चित्रित किया है वह मानस के फलक पर शताब्दियों पूर्व अंकित है।

कवि तुलसी का विद्रोह स्वरूप भाषा-क्रान्ति में भी है। संस्कृति की समृद्ध एवं शास्त्रीय परम्परा को अस्वीकार कर तुलसी ने जन-जन की 'भाखा' अवधी को चुना था। 'ऑगस्टन' युग की शास्त्रीय (Classical) उदात्तता से विद्रोह करके वर्ड्सवर्थ ने उन्नीसवीं शताब्दी में एक क्रान्तिकारी काव्य-सिद्धान्त रखा कि कविता जन-जन की भाषा रची जानी चाहिये। शता-

ब्दियों पूर्व तुलसी ने इस विद्रोही विचार को 'भाखा' को अंगीकार कर कार्य-रूप में परिणत कर दिखाया। व्रजभाषा की माधुरी तथा साहित्यिक परिस्कार से भी हटकर तुलसी ने अवधी में ओज एवं औदात्य की खोज करके क्रान्तिकारी रूप से 'भाखा' को अभिनव साहित्यिक समृद्धि एवं मर्यादा तथा प्रतिष्ठा दी। तथापि मानस की 'भाखा' में जो अभिव्यञ्जना है वह "नाना-पुराण निगमागम सम्मतं" अवश्य है। यही तुलसी की विशिष्टता है।

सत्य को "कोरे कागज" पर लिखकर कहने वाले मौन-मुखर कवि तुलसी के मर्यादित विद्रोह में अपने ढंग के ही 'पैटर्न' और "रिद्‌म" हैं। उनके रावण के खलनायकी बिम्ब में रामत्व के रंग बिखर गये हैं, उनके युवा आक्रोश में अनुशासन की अन्तर्ध्वनि है, उनकी भाषिकी कान्ति में "नानापुराण निगमागम" की शास्त्रीय सम्मति है तथा उनके स्वीकृत परिपाटियों से प्रस्थान में भी परम्परा के पदचाप की आहट है!

"शब्दों का मनोवैज्ञानिक एवं औचित्यपूर्ण इस्तेमाल करने में उन्हें (तुलसी को) कमाल हासिल है। जैसे, जब तक कैकेयी दशरथ से वरदान नहीं माँगती तब तक उन्हें 'भरत मातु' आदि सम्मान-सूचक उपाधियों से पुकारा जाता है, किन्तु वरदान माँगने के पश्चात् ही उसके लिये अपमानपूर्ण सम्बोधन इस्तेमाल होते हैं; जब हनुमान लंका जाते हैं तो रावण को 'लंकेश' कहते हैं क्योंकि तब तक विभीषण रावण के पास नहीं आये थे लेकिन अंगद उसे यह सम्बोधन नहीं देते क्योंकि तब तक विभीषण राम के पक्ष में आ गये थे और राम ने उन्हें 'लंकापति' मान लिया था; रावण के लिये हमेशा 'दसकन्ध', 'दसकण्ठ' 'दसमुख' जैसे शब्द इस्तेमाल हुये हैं क्योंकि वह सोचता नहीं है केवल डींगे मारता है लेकिन जिन अवसरों पर वह सोचता है उन स्थल पर 'दससीस' का व्यवहार किया है; एक बार जब सेतुबन्ध बन जाता है तब वह एक साथ दसों मुखों से 'समुद्र' का नाम लेता है—और कवि ने उस चौपाई में सिन्धु के दस पर्याय गिनाये हैं। अतः तुलसी के शब्दपुंज तथा भाषा का आधुनिक शब्दतात्त्विक अध्ययन ही स्वयं में एक नयी खोज है।"

रामचरितमानस में लोकतत्त्व

—हरिशंकर पाठक

रामचरितमानस महाकाव्य है। लोकतत्व तथा महाकाव्य ये दो विरोधी बातें नहीं हैं। कबीर ने लोक की उपेक्षा की और अपनी अटपटी वाणी द्वारा लोक प्रचलित परम्पराओं की भर्त्सना की। कबीर ने केवल सत्य को देखा, फलतः लोकप्रिय नहीं हो पाये। सूरदास ने अपने 'सूरसागर' नामक विशाल गेय काव्य से लोक परम्पराओं को अवश्य गृहीत किया, उनके सत्य को स्वीकार किया, शिवम् की स्थापना किन्तु उनका लक्ष्य केवल 'सुन्दरम्' की ओर था, फलतः उनके कृष्ण लीला पुरुषोत्तम रहे, योगिराज हुए किन्तु राम का-सा विशाल एवं विराट् रूप नहीं पा सके। सन्त तुलसीदास ने लोकपरम्परा, लोक प्रचलित रीति-रिवाजों को ग्रहण करने के साथ लोक छन्द को भी अपनी रचना का अङ्ग बनाया—परिणामस्वरूप तुलसी के राम लोकरक्षक, लोक रंजक होने के साथ ही साथ मर्यादापुरुषोत्तम ही नहीं हुए अपितु जनमानस में शाश्वत स्थान प्राप्त कर सके। सन्त तुलसी की कृति रामचरितमानस जिसमें लोकतत्त्व का पूर्णरूप से समावेश किया गया है, सत्यम्, सुन्दरम् होने के साथ शिवम् भी और उनके परब्रह्म राम सत् चित् आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द प्रमाणित हुए।

'रामचरितमानस' के 'बालकाण्ड' तथा उत्तरकाण्ड ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध तो रामकथा से अल्पतम रूप से है, किन्तु लोकतत्त्व से परिपूर्ण है। अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड तथा लङ्काकाण्ड का सम्बन्ध मूलतः राम से है, किन्तु उन काण्डों में भी लोकतत्व का समावेश हुआ है। जिन अप्राकृतिक तत्वों का समावेश रामचरितमानस में हुआ है, उनके यज्ञ अनुष्ठान से पुत्रप्राप्ति, पत्थर से मनुष्य का हो जाना, शाप से मनुष्य का पत्थर हो जाना, बाण से सिंधु सुखाया जाना तथा पत्थर को पानी पर तैराना, झाड़ फूंक, शकुन, अपशकुन आदि प्रमुख हैं। अति प्राकृतिक तत्वों की संख्या की मर्यादा है, जिनमें नररूप में जन्म लेनेवाला, ब्रह्म, स्वर्ण-मृग, दशशीश, बीस भुजाओं वाला दानव, गो का वेश धारण करनेवाली

पृथ्वी आदि अमानव तत्वों का समायोजन भी सन्त तुलसीदास ने रामचरितमानस में सफलतापूर्वक किया है, जिनमें रूप परिवर्तन कर लेना, अग्नि में प्रविष्ट होने पर भी भस्म न होना, अग्नि में प्रविष्ट प्रतिरूप माया का सीता रूप में हो जाना, एक बाण से सात वृक्षों का गिर जाना आदि प्रमुख हैं।

रामलला नहछू, जानकी मंगल, पार्वती मंगल उनकी ऐसी रचनाएं हैं जिनसे लोकगीतों, लोकछन्दों के माध्यम से लोकतत्व का रूप सन्निविष्ट किया गया है। सीता कैकेयी के वरप्राप्ति के सम्बन्ध का लोकगीत द्रष्टव्य है।

"जे मोरे कँटवाँ निकारीहैं, वेदन हरि लीहैं,
अरे जवन मँगनवाँ जे मँगिहैं, तवन हम देइव।

राम विवाह के अवसर पर चमारिन का राम को पहनाने के लिए जूते लेकर आयी है, किन्तु किस प्रकार राजा दशरथ के आँगन में प्रवेश करती हैं,

"मोचिन वदन संकोचिन, गन-गन पग देईहौं ."

मोचिन के इस प्रकार के चित्रण में कितनी स्वाभाविकता है, दर्शनीय है।

लोक प्रचलित अन्धविश्वासों को परिमार्जित रूप देते हुए सन्त तुलसीदास ने चित्रित किया है। राम के कृत्यों से अयोध्या के लोग ही नहीं, वन के लोग भी उनको ईश रूप में स्वीकार करते हैं। राम की शक्ति कितनी विशाल है, इसका परिचय प्रारम्भ से ही ताड़कावध, मारीच, सुबाहु युद्ध से प्रकट हो जाता है। गौतम की पत्नी अहल्या चरणरज पाकर पुनः मानव शरीर धारण करती है और राम की स्तुति करती है। जनकवाटिका से राम सीता का एक दूसरे की ओर सहज भाव से निरखना और अनुराग युक्त होकर लौटना भी लोकतत्व का ही रूप है। राम का सीतान्वेषण में बन्दरों और भालुओं की सहायता, बन्दरों और भालुओं का रावण की सेना से युद्ध करना ये सारी वातें लोक प्रचलित किंवदन्तियों एवं जनश्रुतियों के आधार पर ही लिपिवद्ध हुई हैं। कालान्तर में जनश्रुतियाँ लिपिवद्ध होकर शाश्वत हो जाती हैं और भविष्य में जनपथ प्रदर्शन भी करती है। संक्षेप में रामचरितमानस का बाह्यरूप पौराणिक है, किन्तु आंतरिक स्वरूप लोक तत्वों से परिपूर्ण है।

*

दर्शन, भक्ति तथा साहित्य का अगाध सागर 'मानस'

—सुशीला श्रीवास्तव

नीरव सांध्य वेला, सुरम्य नदी का पावन तट, मौन यति के समान मौन सन्देश देते हुये तरु-निकर, शान्त सुस्थिर नदी का निर्मल जल, अरुणिम आकाश तथा दूर-दूर तक फैला हुआ धरती का हरित अंचल मेरे उदास मानस में उद्भासित हो अपने में मुझे समेट जैसी परम शान्ति और सुख प्रदान करता है, वैसी ही चरम शान्ति मुझे रामचरित मानस के पाठ से भी प्राप्त होती रही है। बचपन में ही स्नेहमयी जननी के स्नेहांचल की छाया उठ जाने पर उनकी गायी चौपाइयाँ मुझे समय-असमय सम्बल प्रदान करती रही हैं। तब मेरे मानस में न तुलसी बाबा का चित्र था; न मानस की महत्ता का ज्ञान। पर आज भी उस चरम सुख को लेखनी से उतार सकना मेरे लिये सम्भव नहीं है।

रामचरितमानस की रचना के चार शतक व्यतीत हो चुके हैं। महाकवि तुलसी का नाम भले ही जनमानस से उतर चुका हो पर उनकी वाणी आज भी करोड़ों नर-नारियों के हृदय को शीतल कर रही है, उन्हें दिग्भ्रान्त होने से बचा रही है, उनकी समस्याओं का समाधान दे रही है। निःसन्देह जब तक मानव सभ्यता जीवित रहेगी अध्यात्म जीवित रहेगा, मनुष्य की समस्यायें रहेंगी, रामचरितमानस का प्रभाव भी अखण्ड रहेगा, उसका दिव्य प्रकाश मानव का स्वस्थ मार्ग दर्शन करता रहेगा।

'मानस' में दर्शन, भक्ति और साहित्य का अगाध सागर लहरा रहा है। क्लिष्टतम भारतीय दर्शन का समग्रसार इस ग्रन्थ में निहित है, तथा यह भक्ति की मिठास से भरपूर है।

रामचरित मानस में जिस शान्त रसास्पद करुणा जल से अभिसिक्त गृह-धर्म की स्थापना की गई है वह शाश्वत और सार्वभौम है। यह ग्रन्थ श्रीमदभागवद्गीता की टीका तथा मानव का शाश्वत इतिहास है।

"सीय राम मय सब जग जानी"

अथवा

"जेहि जाने जग जाइ हेराई"

अथवा

"जासु सत्यता ते जड़ माया । भास सत्य इव मोह सदाय।"

में अद्वैत वेदान्त के दर्शन होते हैं। यों तो 'मानस' के स्मरण मात्र से उसके कई स्वरूप साकार हो उठते हैं—चाहे वह श्रद्धालु भक्त के पूजागृह में अक्षत, पुष्पों से पूजित हों, साहित्यकार की मेज अथवा दार्शनिक के दर्शन ग्रन्थों के बीच सुशोभित हो, समान रूप से समादृत और महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में सर्वत्र ही भक्ति का अगाध सागर लहरा रहा है।

धरम न अरथ न काम रुचि, गति न चहौं निरबान।
जनम-जनम रति रामपद, येहि वरदान न आन ॥

ग्रन्थ में प्रारम्भ से अन्त तक भक्ति का सहस्र स्रोत प्रवाहित है, उत्तर काण्ड में श्रीभुशुण्डि जी साक्षात् दर्शन के समय वरदान मिलने पर भी विचार करते हैं—

"प्रभु कह. देन सकल सुख सही
भगति आपनी देन न कही
भजन हीन सुख कवने काजा
अस विचारी बोलेउ खगराजा।"

धर्म ग्रन्थ के रूप में रामचरितमानस अद्वितीय है। उसके प्रथम चरण में ही तुलसी बाबा ने यह घोषणा की अवश्य "स्वांत सुखायः तुलसी रघुनाथ गाथा" पर जिस समाज में वे रह रहे थे उसकी दयनीय अवस्था की अवहेलना वे न कर सके। उन्होंने समाज के दुःख निवारण के लिये रामचरितमानस के रूप में जो महौषधि दी वह असहाय मृतप्राय हिन्दू जाति के लिये संजीवनी सिद्ध हुई।

वस्तुतः जो कार्य 'गीता' के अद्भुत काव्य दर्शन के द्वारा सम्पन्न न हो सका था, वह लोक भाषा के बहुमूल्य रत्न 'मानस' द्वारा साकार दृष्टान्तों के रूप में सम्पन्न हुआ। मानस का राम मनुष्य बनकर संघर्षों में कूद पड़ा है और उनसे मूक भाव से जनसाधारण के सम्मुख व्यवहार की भूमि पर कर्मवाद को उतारा है।

★

वाल्मीकि आश्रम, सीतामढ़ी

—डॉ० किशोरीलाल गुप्त

आदि कवि ने भारत के किस पुण्यस्थल पर काम-मोहित क्रौंच के जोड़े को क्रूर एवं हृदयहीन व्याध द्वारा शराहत होते हुए देखा ? किस स्थान पर उनकी मूल भारती ने, उनके हृदय की कोमल करुणा ने, उनके 'शोक' ने अपनी अभिव्यक्ति 'मा निषाद' वाले प्रसिद्ध 'श्लोक' के रूप में की ? सीताजी ने दूसरे वनवास के अपने कठिन दिन कहाँ बिताए ? लवकुश कहाँ उत्पन्न हुए ? लवकुश का श्रीरामचन्द्र की सेना से वह प्रसिद्ध युद्ध कहाँ हुआ, जिसमें राम-दल के सभी महारथी–शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, जामवंत, अंगद, सुग्रीव—पराजित हुए। कुश ने कहाँ पर राघव के मत्तदल-करीश्वर को अंकुश देकर फेरा ? सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है संसार का आदि-काव्य –रामायण—कहाँ पर विरचित हुआ ?

इन सभी प्रश्नों का समाधान हो जाय, यदि ज्ञात हो जाय कि आदि कवि महर्षि वाल्मीकि का पावन तपोवन कहाँ था। हमारे बहुत से प्राचीन स्थानों का पता नहीं लगता। एक ही स्थान होने का गौरव कभी-कभी कई स्थान लेना चाहते हैं, जैसे—

मै पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ।।

इस दोहे में आया हुआ सूकरखेत भी विवाद का विषय बन गया है। कुछ लोग एटा जिले के अंतर्गत गंगातट-स्थित सोरों को यह गौरव देते हैं। सोरोंवाले तो यह भी कहते हैं कि गोसाइँजी यहीं पैदा भी हुए थे। कुछ लोग गोंडा के अन्तर्गत सरयू तट पर स्थित सूकरखेत को यह गौरव प्रदान करते हैं। पिछले दिनों हिन्दी और अँग्रेजी के पत्रों में महर्षि भरद्वाज के आश्रम को लेकर विद्वत्तापूर्ण विवादात्मक लेख लिखे गए थे, जिसमें बंगाल के भूतपूर्व तत्कालीन गवर्नर एवं युक्तप्रांत के न्याय-मंत्री डाक्टर कैलाशनाथ काटजू ने भी भाग लिया था। इसी प्रकार दुर्वासा ऋषि के निवास-स्थान के विषय में

भी दो स्थानों की चर्चा सुनी जाती है। एक स्थान है इलाहाबाद जिले में अवध तिरहुत रेलवे के रामनाथपुर स्टेशन के पास। यहाँ प्रतिवर्ष नागपंचमी को ऋषि दुर्वासा का मेला लगता है। दूसरा स्थान है आजमगढ़ जिले में तमसा नदी के किनारे। इसका उल्लेख श्री गुरुभक्त सिंह ने अपनी सुन्दर काव्यकृति 'विक्रमादित्य' में किया है। इसी प्रकार वाल्मीकि आश्रम का निर्णय करना भी विवाद से खाली नहीं है।

भवभूति के 'उत्तर रामचरित' के पारायण से प्रतीत होता है कि वाल्मीकि का आश्रम दक्षिण में कहीं दंडकारण्य के आसपास था, क्योंकि जब श्रीरामचन्द्र शंबूक का वध करके लौटते हैं और पंचवटी-स्थित अपने प्राचीन आश्रम को देख सीता की सुधि कर नेत्रों में नीर भर लाते हैं, तब सीताजी की परम प्यारी सखी वासंती द्वारा उन्हें सीताजी का दर्शन सुलभ होता है।

गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस में वाल्मीकि और राम के मिलन का उल्लेख करते हैं। भरद्वाज जी से मिलकर राम-सीता-लक्ष्मण जब चलना चाहते हैं तब महर्षि उन्हें यमुना-तट तक पहुँचाने आते हैं। यमुना पार होने पर इस त्रिमूर्ति को एक अज्ञातकुलशील तापस मिलता है—स्वर्गीय शुक्ल जी के अनुसार इस तापस के रूप में गोसाईं जी ने स्वयं अपनी श्रद्धांजलि अपने इष्टदेव के चरणों में समर्पित की है। यहाँ से आगे बढ़ने पर ग्राम-वधुओं का उत्कंठापूर्ण, समुत्सुक, संवेदनात्मक, सहृदय एवं मधुर प्रसंग आता है। उनसे मिलते-जुलते हुए आगे बढ़कर संध्या समय वटवृक्ष तक पहुंचते हैं। वहाँ रात्रि यापन करने के अनंतर दूसरे दिन प्रातःकाल वाल्मीकि आश्रम पर पहुंचते हैं—

सुचि सुन्दर आश्रमु निरखि हरषे राजिवनैन।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि, आगे आयउ लैन॥

मुनि कहुँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमानु आश्रमहिं आने॥
मुनिवर अतिथि प्रानप्रिय पाए। तब मुनि आसन दिए सुहाए॥
कंदमूल फल मधुर मँगाए। सिय सौमित्र राम फल खाए॥

इसके पश्चात् श्रीरामचन्द्र ने अपनी सारी कथा वाल्मीकि जी से कह सुनाई और अपने रहने के लिये उचित स्थान पूछा—

अब जहँ राउर आयसु होई·········
तहँ रुचि रुचिर परन तृनशाला। वास करौं कछु काल कृपाला॥

श्रीरामचन्द्र जी की यह बात सुनकर महर्षि ने उत्तर दिया—

पूँछेउ मोहिं कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होउ तहँ देहु कहि, तुमहिं दिखावौं ठाउँ॥

× × ×

जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु।
मुक्ताहल गुन गन चुगहिं, वसहु राम हिय तासु॥

× × ×

कह मुनि सुनहु भानुकुल नायक। आश्रम कहौं समय सुखदायक
चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू

× × ×

चित्रकूट महिमा अमित, कही महा मुनि गाइ।
आइ नहाने सरितवर, सीय सहित दोउ भाइ॥

इस अन्तिम दोहे से प्रतीत होता है कि वाल्मीकि-आश्रम से चित्रकूट कोई वहुत दूर नहीं था और वहाँ से चलकर संभवतः दोपहर का स्नान इन तीनों पथिकों ने चित्रकूट में वहने वाली मंदाकिनी में किया।

महाकवि केशव ने रामचंद्रिका में अयोध्याकांड की कथा को यों ही चलता किया है। उसमें जब गंगा-यमुना पार होने का प्रसंग नहीं है, तो वाल्मीकि मिलन तो दूर रहा। हाँ, श्री मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत में तुलसीदास की भाँति इस वनयात्रा का वर्णन किया है। साकेत में रहने का स्थान वाल्मीकि से न पूछकर प्रयाग ही में भरद्वाज से पूछ लिया गया है—

"ऐसा वन निर्देश कीजिए अब हमें
जहाँ सुमन-सा जनक-सुता का मन रमे।"

× × ×

"चित्रकूट तब तात तुम्हारे योग्य है
जहाँ अचल सुख, शांति और आरोग्य हैं।"
"जो आज्ञा" कह राम सहर्ष प्रयाग से
चित्रकूट की ओर चले अनुराग से
दिखला आए मार्ग आप मुनिवर उन्हें

मिली सूर्य की सुता धन्य मुनिवर उन्हें।

× × ×

करके यमुना-स्नान, बिलम वट के तले
लक्ष्मण, सीता, राम विकट वन को चले।

× × ×

चल यों सब वाल्मीकि महा मुनि से मिले,
ध्यानमूर्ति निज प्रकट प्राप्त करके खले।
वे ज्यों कविकुलदेव धरा पर धन्य थे,
ये भायक नरदेव अपूर्व अनन्य थे।
"कवे, दाशरथि राम आज कृतकृत्य है,
करता तुम्हें प्रणाम सपरिकर भृत्य है।"
"राम, तुम्हारा वृत्त आप ही काव्य है
कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है।"
आए फिर सब चित्रकूट मोदितमना,
जो अटूट गढ़ गहन वन-श्री का बना।

साकेत के अनुसार भी वाल्मीकि-आश्रम चित्रकूट के पास, चित्रकूट और यमुना के बीच कहीं था। मैथिली बाबू ने तुलसी की परम्परा पर चलकर चित्रकूट और यमुना के बीच वाल्मीकि-आश्रम का वर्णन किया है और सम्भवतः तुलसीदास जी ने भी अपने पूर्व से चली आती हुई किसी परम्परा का अनुसरण करके ही वाल्मीकि-आश्रम का यह वर्णन किया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, भवभूति के अनुसार तो वाल्मीकि-आश्रम और भी दक्षिण होना चाहिए।

भवानीदास ने गोसाईं चरित में ब्रह्मावर्त को वाल्मीकि-आश्रम एवं लव-कुश की जन्म भूमि तथा जानकी की निर्वासन भूमि माना है। यह ब्रह्मावर्त वही है, जिसे आजकल बिठूर कहते हैं, जो कानपुर जिले में गंगा के किनारे हैं। एक बार गोसाईं जी अयोध्या से रुन्हाई (जिला फैजाबाद में है, यहाँ थाना है), सूकर खेत और पसका (सरजू, घाघरा का संगम, जिला गोंडा), सियबार, लखनपुर (लखनऊ), मड़िआऊँ, चनहट, मलीहाबाद आए।

मलीहाबाद से वे वाल्मीकि-आश्रम ब्रह्मावर्त के लिए आगे बढ़े। रास्ते में कोटरा में वे अनन्य माधवदास से मिले। कोटरा में कुछ दिन अनन्य-माधवदास का सत्संग करके गंगा-तट स्थित ब्रह्मावर्त आए—

रहि तहँ कछु सतसंग करि विविध भाँति सुख पाइ
ब्रह्मावर्त सु देवसरि, दरस परस करि जाइ
वाल्मीकि आश्रम निरखि, पूजी सिय-पद-धूरि
भए प्रेम व्याकुल, सिथिल गात, द्रिगन जल पूरि
श्री जानकी सगाज पद, अविगति भूमि निहारि
वार-बार तन पुलक ह्वै, दसा शरीर बिसारि
श्री महराजकुमार शुभ, जन्मभूमि जिय जानि
आश्रम आदि अनादि कवि, लखि पुनि-पुनि पुलकानि
बहुविधि सुमिरन भजन करि, विमल वास सुख मूरि
लहि सुरसरि-स्नान सुख, चले सुकृतमय पूरि।

वापसी में वे संडीला, नीमसार, पिहानी, मिश्रिख, जैरामपुर, खैराबाद आदि होते हुए अयोध्या आए।

'रामचरितमानस' के अतिरिक्त 'कवितावली' में भी गोसाईं जी ने वाल्मीकि-आश्रम का वर्णन तीन कवित्तों में किया है—

जहाँ वाल्मीकि भए व्याध तें मुनीन्द्र साधु,
'मरा मरा' जपि सुनि सिख ऋषि सात की।
सीय को निवास, लवकुश को जनम-थल,
'तुलसी' छुवत छाँह ताप गरै गात की॥
बिटप-महीप सुरसरित-समीप सोहै,
सीतावर देखत पुनीत होत पातकी।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि
अंकित जो जानकी-चरन जलजात की॥१३८॥
मरकत-बरन परन, फल मानिक-से

कैधौं, लसै जटा-जूट जनु रूख वेष हरु है ।
सुखमा को ढेरु, कैधौं सुकृत-सुमेरु,
कैधौं संपदा सकल मुद मंगल को घरु है ॥
देत अभिमत, जो समेत-प्रीति सेइए,
प्रतीति मानि 'तुलसी' विचारि काको थरु है ।
सुरसरि निकट सोहावनि अवनि सोहै,
राम रमनी को वट कलि कामतरु है ॥१३९॥

देवधुनी पास, मुनिवास, सी निवास जहाँ,
प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि हैं ।
जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ,
रागिन पै सीठि, डीठि बाहरो निहारिहैं ॥
'आयसु' 'आदेस' 'बाबा' 'भलो-भलो' 'भावसिद्ध,'
'तुलसी' विचारि जोगी कहत पुकारि हैं ।
राम भगतन को तौ कामतरु तें अधिक
सिय-वर सेए करतल फल चारि हैं ॥१४०॥

इन कवित्तों से सिद्ध है कि वाल्मीकि-आश्रम की पवित्र भूमि गंगा-तट पर है या उसके अत्यन्त निकट है। तीनों कवित्तों में इसका उल्लेख है—

(१) बिटप महीप सुरसरित समीप सोहै
(२) सुरसरि निकट सोहावनी अवनि सोहै
(३) देवधुनी पास ।

रामचरितमानस एवं साकेत-वर्णित वाल्मीकि-आश्रम गङ्गा से बहुत दूर है, गङ्गा और इसके बीच प्रसिद्ध यमुना भी आ गई हैं। निश्चय ही रामचरितमानस का वाल्मीकि-आश्रम और कवितावली का वाल्मीकि-आश्रम एक ही नहीं हैं।

पहले कवित्त में गोसाइंजी ने वाल्मीकि-आश्रम की भौगोलिक स्थिति पर भी पूर्ण प्रकाश डाल दिया है। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

'वारिपुर दिगपुर बीच बिलसित भूमि'

स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी ने कवितावली के इस छन्द की टीका करते हुए इस स्थान का परिचय भी दिया है। उनके अनुसार यह स्थान इलाहाबाद और बनारस को मिलानेवाली अवध तिरहुत रेलवे के इलाहाबाद जिले के भीटी स्टेशन से प्रायः चार मील दक्षिण गंगा जी के तट पर स्थित है। लालाजी ने स्थान-निर्देश तो कर दिया है, उसका वर्तमान नाम नहीं बताया है। इस स्थान को आजकल 'सीतामढ़ी बनकट' या केवल 'सीतामढ़ी' कहते हैं।

सीतामढ़ी बनारस जिले के अन्तर्गत ज्ञानपुर तहसील में गङ्गा के उत्तरी किनारे पर स्थित है। गोसाईंजी ने वाल्मीकि आश्रम की जो भौगोलिक स्थिति बताई है, वह सीतामढ़ी पर पूर्ण रूप से घट जाती है। यह गङ्गाजी के किनारे है, साथ ही वह 'वारिपुर' और 'दिगपुर' स्थानों के बीच में स्थित भी है। आजकल 'वारीपुर' को 'वारीपुर' कहते हैं। यह सीतामढ़ी के पूर्व में एक मील की दूरी पर गंगा-तट पर ही स्थित है। यहाँ एक स्तूप भी है जो दूर से दिखाई देता है। जनसाधारण इसे 'तोखा' कहते हैं। 'दिगपुर' को आजकल 'डीह' कहते हैं। यह भी गंगा-तट पर ही है। यह ऊँचाई पर बसा है, इसी से इसका नाम 'डीह' है। 'दिगपुर' का 'पुर' निकल गया है और 'दिग' का अपभ्रंश ही 'डीह' है। इसी के नाम पर आजकल डीह ब्लाक है।

गोसाईं जी ने सीतामढ़ी की यात्रा की थी और कुछ दिन इस सिद्धपीठ में वे रहे भी थे, तभी वे इसकी सूक्ष्म भौगोलिक स्थिति का विवरण दे सके हैं। यदि वे इस कोने में पड़े हुये तीर्थस्थान में न आए होते तो इसका माहात्म्य भी वर्णन न करते। गोसाईं जी सीताराम के अनन्य भक्त थे और उनसे सम्बन्धित स्थानों की यात्रा उन्होंने की थी। कभी काशी से प्रयाग या प्रयाग से काशी आते हुए उन्होंने सीतामढ़ी का भी दर्शन किया था और इसी सिलसिले में वे विंध्याचल, अष्टभुजी एवं मिर्जापुर भी गए रहे होंगे।

तथाकथित वेनीमाधवदास रचित मूल 'गोसाईं चरित' के अनुसार संवत् १६२८ में गोसाईं तुलसीदास ने चित्रकूट में गीतावली एवं कृष्ण गीतावली की रचना की और हनुमान जी के आदेश से अयोध्या के लिए चल पड़े। चित्रकूट से पहले वे प्रयाग त्रिवेणी संगम पर आए। उस समय मकर-संक्रांति का पवित्र स्नान था। यहाँ पर उन्हें याज्ञवल्क्य एवं भरद्वाज के चमत्कार-

पूर्ण दर्शन हुए। फिर विकल चित्त हो, गङ्गा के किनारे-किनारे, गोसाईं जी सीतामढ़ी पहुँचे। यहाँ तीन दिन रहे। फिर काशी चले गए।

मग ठीक किये मग आगु वढ़े
चलिकै पुनि सुरसरि तीर कढ़े
तव तीरहिं तीर चले चित दै
भइ साँझ जहाँ, सो तहाँ टिकिगै
दिग वारिपुरा विच सीतामढ़ी
तहँ आसन डारत वृत्ति चढ़ी
नहिं भूख न नींद विक्षिप्त दसा
उर पूरव-जन्म-प्रसंग वसा
सीता व: तर तीन दिन, वसि सुकवित्त वनाय
वंदि छोड़ावत विध नृप, पहुँचे कासी जाय ॥३५॥

—मूल गोसाईं चरित, (गीता प्रेस संस्करण), पृष्ठ १७

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि जो भी भक्ति 'मूल गोसाईं चरित' का रचयिता रहा हो, वह इसी सीतामढ़ी को वाल्मीकि आश्रम मानता था—

'उर पूरव जन्म प्रसंग वसा' से यह संकेत है कि यहाँ आते ही तुलसीदास को अपने उस पूर्व जन्म का स्मरण हो आया, जब वे वाल्मीकि थे और इसी स्थान पर निवास करते थे।

सीतामढ़ी का अर्थ है सीताजी की मढ़ी या मठ—सीताजी का तप-स्थान। आस-पास के देहात में लोग इसी स्थान को सीता जी के ही नाते जानते हैं। जनसाधारणतया वाल्मीकि का नाम भी नहीं जानते और इस स्थान को सीता के द्वितीय वनवास के स्थान के नाम से जानते हैं। इस स्थान पर एक कच्चा घर है, जिसका कुछ अंश ईंट का भी बना हुआ है। इस ईंटवाले अंश में सीता, लव, कुश और वाल्मीकि की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। इसके आस-पास नार-खोर है कुछ दूर पर जो बस्ती है, उसको वनकट कहते हैं। स्पष्ट है कि यहाँ पहले वन था और उस वन को काटकर यह गांव वसाया गया है। इस वनकट गांव में जिला बोर्ड की ओर से एक प्राइमरी स्कूल चल रहा है।

सीताजी की स्मृति में आषाढ़ शुक्ल नवमी को हर साल यहाँ पर मेला लगता है। लोग इसे 'रामनवमी' का मेला कहते हैं। कुछ पता नहीं इस तिथि को रामनवमी क्यों कहते हैं? रामनवमी तो चैत सुदी नवमी को कहते हैं, क्योंकि उस दिन श्रीरामचन्द्र अयोध्यापुरी में अवतीर्ण हुए थे। संभवतः सीताराम में विशेष भेद न करके लोग इस तिथि को भी रामनवमी कहने लगे। पता नहीं सीताजी की स्मृति को बनाए रखने के लिये यही तिथि क्यों चुनी गई। हो सकता है सीताजी इसी तिथि को वाल्मीकि-आश्रम में आई हों। हो सकता है इसी दिन लव-कुश का जन्म हुआ हो। हो सकता है सीताजी इसी दिन अपनी माता पृथ्वी के उदर में समा गई हों। मन्दिर से पश्चिम जो बड़ा नाला गंगाजी में गिरता है उसके विषय में लोग कहते हैं कि लव-कुश की विजय के पश्चात् जब रामचन्द्रजी सीताजी को पुनः ग्रहण करना चाहते थे, तब सीताजी के अनुरोध पर वहाँ पृथ्वी फट गयी थी, उससे अपनी दुलारी बेटी का दारुण दुःख न देखा गया और सीताजी वहीं अन्तर्धान हो हो गईं। श्रीरामचंद्र जी ने पृथ्वी के गर्भ में विलीन होती हुई अपनी प्रेयसी और पतिप्राणा पत्नी की केशराशि को ही पकड़ पाया। सीताजी तो हाथ न लगीं, केवल उनके केश राम के हाथ आए। ये ही केश कुश और कास के रूप में उस नाले के दोनों ओर अत्यधिक मात्रा में उगे हुए हैं—ऐसा जनसाधारण का विश्वास है।

ग्राम्य जनता का एक और विश्वास है कि इस मेले के दिन सीतामढ़ी में कुछ न कुछ बूंदाबांदी अवश्य होती है, जब 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' काला बादल नहीं दिखाई देता और एक-एक करके आषाढ़ के दिन बीतते जाते हैं, तब लोगों की प्रतीक्षातुर आँखें इसी दिन का रास्ता देखने लगती हैं। संभवतः इस बूंदाबांदी का सम्बन्ध सीताजी के आँसुओं से है। उस दिन सीता जी की स्मृति में निर्दय आसमान भी आँसू बहा देता है। जो हो, इस दिन हर साल पानी बरसता हुआ देखा गया है।

यह स्थान अत्यन्त रमणीक है और चारों ओर वृक्षों से घिरा हुआ है। मन्दिर के आसपास वट-वृक्ष हैं जो सीताजी के लगाए कहे जाते हैं। गोसाइँ जी ने भी सीता-वट की अमित प्रशंसा कवितावली के कवित्तों में की है। वर्त्तमान वट-वृक्ष इतने पुराने नहीं हैं कि यह कहा जा सके कि ये सीताजी के करकमलों द्वारा रोपे गए रहे होंगे। ये वृक्ष तो तीन सौ वर्ष भी पुराने नहीं

प्रतीत होते। तुलसीदासजी ने जिस सीता-वट की प्रशंसा की है, वह इनका पूर्वज रहा होगा। हो सकता है सीताजी ने यहीं वट-वृक्षारोपण किया हो और ये वट-वृक्ष उसी पुण्य वृक्ष की सन्तानें हों।

सीतामढ़ी के दक्षिण में गंगाजी की पवित्र धारा है! मन्दिर में पुजारी लोग रहते हैं। मन्दिर के साथ निर्वाह के लिये बनारस राज्य की ओर से कुछ भूमि भी लगी हुई है। आज से प्रायः पैंतालीस वर्ष पहले इस मन्दिर में सशस्त्र डाका पड़ा था। सीताजी के सारे वस्त्रालंकार तथा उनकी सोने की आँखें भी डाकू ले गए थे। मन्दिर की वहुत कुछ श्री तभी से चली गई।

ऐसा प्रतीत होता है कि गोसाइंजी के समय में यह प्रसिद्ध सिद्धपीठ भी था और अनेक योगी-यती तपस्या करने के लिये यहाँ आया करते थे। पर अब यहाँ योगी-यतियों का जमघट नहीं है। एक पुजारी यहाँ रहता है और कभी-कभी दो-चार साधु-संन्यासी रमते हुए आते हैं और दो-चार दिन विरमते हुए चल जाते हैं।

इस पवित्र स्थल की दशा अत्यन्त शोचनीय है, यद्यपि काशी-नरेश तक इस पुण्य भूमि का दर्शन कर अपने को कृतार्थ मानते हैं। यह जीर्ण-शीर्ण, खपरैलों वाला मन्दिर न तो आदिकवि वाल्मीकि के गौरव के अनुकूल है, न उन महासती सीता के और न महावीर के समान वीर को बाँध लेनेवाले उन महावीर बालक कुश और लव के।

*

और अन्त में........

महात्मा गाँधीजी से किसी ने गीता-प्रचार पर एक सन्देश माँगा था। उत्तर में उन्होंने सिर्फ इतना ही लिख दिया :—

"टनों गीता प्रचार से यह कहीं बेहतर है
कि हम तोले भर गीता के अनुसार कार्य करें।"

महाकवि तुलसीदास पर तो काफी साहित्य निकल चुका है और अब भी निकल रहा है। पर क्या उन महाकवि के उपदेशों के अनुसार हम लोग कुछ काम भी करते हैं ?

काशी जनपद महाकवि का खास जनपद है। भदोही में तो वे शायद पधारे भी थे। उसके प्रमाण मिलते हैं।

महाकवि ने एक जगह भगवान के मुख से कहलाया है :—

'यद्यपि सब वैकुण्ठ समाना।
वेद पुरान विदित जगजाना ॥
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ।
यह प्रसंग जाने कोउ-कोऊ ॥"

ऋषिवर बाल्मीकि ने भी यही बात श्रीराम के भी मुख से कहलवायी थी—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

बाल्मीकि रामायण में स्वजनपद प्रेम की बात कई जगह कहलायी गई है। पहरेदार राक्षसी से जब हनुमान जी ने लङ्का का पता पूछा तो उसने तपाक से कहा था—

"अहं हि लङ्का नगरी स्वयंमेव प्लवङ्गम्"

"रे बन्दर ! मैं स्वयं लङ्का नगरी हूँ।"

सिस्टर निवेदिता ने इसे नागरिकता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण बतलाया था !

क्या ज्ञानपुर तथा भदोही के कोई निवासी भी इसी प्रकार की गर्वोक्ति कर सकते हैं ? इन दोनों स्थानों को सुन्दर से सुन्दर बनाने का संकल्प क्या किसी व्यक्ति ने भी लिया है ?

सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला हरदयाल (Hindi for self-culture) में एक अध्याय ही इस विषय पर दिया है। प्रत्येक विद्यार्थी को उसे पढ़ लेना चाहिए।

—पण्डित बनारसी दास चतुर्वेदी

हमारे लेखक

१. पं० बनारसीदास चतुर्वेदी—सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं साहित्यकार, पद्मभूषण : ज्ञानपुर में।
२. शंभुनाथ—एम. ए. (अंग्रेजी), आई ए. एस., परगनाधिकारी, ज्ञानपुर (वाराणसी)
३. डॉ० रवीन्द्र भ्रमर—कवि एवं समालोचक, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय
४. वैद्यनाथ पाण्डेय—पी. ई. एस. प्रधानाचार्य, राजकीय इण्टर कालेज, ज्ञानपुर
५. प्रेमकृष्ण मिश्र— महा प्रबधक, चीनी मिल, औराई (वाराणसी)
६. डॉ० श्यामलाकान्त वर्मा—प्रवक्ता, राजकीय हिन्दी संस्थान, वाराणसी
७. डॉ० चन्द्रविजय चतुर्वेदी—प्रवक्ता, रसायन विभाग : काशीनरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर
८. डॉ० सन्तबख्श सिंह—प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, काशीनरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालव, ज्ञानपुर
९. डॉ० विभुराम मिश्र—प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग, काशीनरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर
१०. श्रीमती विद्या पाठक—प्रधानाचार्या, गर्ल्स इण्टर कालेज, ज्ञानपुर
११. डॉ० होरिल—प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, काशीनरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर
१२. डॉ० युगेश्वर— रीडर, हिन्दी विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
१३. श्रीकान्त शर्मा— प्रवक्ता, वाणिज्य, राजकीय इण्टर कालेज, ज्ञानपुर
१४. डॉ० अर्जुनराम प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग, काशीनरेश राजकीय स्नातकोत्तर
१५. डॉ० मधुकर भट्ट—प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग, काशीनरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर
१६. डॉ० कपिलदेव द्विवेदी—प्रो० एवं अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, काशीनरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर
१७. हरिशंकर पाठक—प्राध्यापक हिन्दी, राजकीय इण्टर कालेज, ज्ञानपुर
१८. श्रीमती सुशीला—प्राध्यापिका हिन्दी, गर्ल्स इण्टर कालेज, ज्ञानपुर
१९. डॉ० किशोरीलाल गुप्त—प्रधानाचार्य, हिन्दू डिग्री कालेज, जमानिया, गाजीपुर

"रामचरितमानस
की आधुनिकता को
बदस्तूर रखने का
मतलब है
उस पर
चार सौ साल से
जमी धूल को
झाड़ना पोछना !"